प्रकाशक :

कुमारप्पा ग्रामस्वराज्य संस्थान
बी–190 यूनिवर्सिटी मार्ग
बापूनगर, जयपुर–302004

मध्यप्रदेश सेवक संघ
रैसलपुर, होशंगाबाद (म. प्र.)

निदेशक :

जवाहिरलाल जैन

प्रस्तुतकर्त्ता :

डॉ० अवध प्रसाद

मूल्य—4.00

वर्ष—1976

मुद्रक :

वैशाली प्रिंटिंग प्रेस
घी वालों का रास्ता
जयपुर–302003

विषय-सूची

आरंभिक

भाग एक

भाग दो

आरम्भिक

गांधीजी भारतीय वर्णाश्रम दृष्टि के आदर्शनिष्ठ समर्थक थे, पर उन्होंने इसे ईश्वर-प्राप्ति के बजाय समाज सेवा के लक्ष्य से अनुप्राणित किया। उन्होंने ऐसे समाज सेवक या सामाजिक कार्यकर्त्ता का निर्माण किया जो अहिंसा, सत्यादि एकादश व्रतों का अनुपालन निष्ठा पूर्वक करता हो और अपना चिंतन, समाज सेवा के किसी-न-किसी रचनात्मक कार्यक्रम की पूर्ति में लगाता हो। स्वाभाविक रूप से ही इन कार्यक्रमों के द्वारा समाज के सबसे कमजोर और पिछड़े अंगों की सेवा को प्राथमिकता मिलती थी। गांधीजी के जीवन काल में उनकी, और बाद में विनोबाजी की प्रेरणा से पर्याप्त संख्या में ऐसे समाज सेवक इस देश मे सामने आये जिन्होंने अपने जीवन के दस-पन्द्रह से लगाकर पचास-पचास वर्ष तक इस प्रकार की समाजसेवा में खपा दिये हैं और उनके चारों ओर एक या अधिक संस्थाएं या केन्द्र खड़े हो गये हैं और चल रहे हैं। इस प्रकार के केन्द्र भारत के प्राय: प्रत्येक राज्य में हैं जो अपने अपने ढंग से, अपने अपने क्षेत्र में न्यूनाधिक सफलता से कठिनाइयों के बीच आज भी सेवारत है।

समाज-सेवा के इन केन्द्रों का समाज पर पड़ने वाले प्रभाव को देखने के लिए मध्यप्रदेश सेवक सघ इन्दौर ने निर्णय किया कि मध्यप्रदेश के ऐसे केन्द्रों के कार्यों की समीक्षा की जाय। समीक्षा के साथ-साथ केन्द्र की समस्याओं और उसके भावी स्वरूप पर भी विचार किया जाय। मध्य प्रदेश सेवक संघ के अनुरोध पर कुमारप्पा ग्रामस्वराज्य सस्थान ने प्रति वर्ष एक केन्द्र का अध्ययन करने का निश्चय किया और इसी क्रम में ग्रामभारती टवलाई और बुनियादी विद्यालय करजगांव के अध्ययन किये गये।

यह अध्ययन डा. अवध प्रसाद जी ने टवलाई एव करजगांव जाकर किये हैं। सामग्री सग्रह के लिये क्षेत्र के लोगों से साक्षात्कार के अतिरिक्त संस्था में प्राप्त प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री का उपयोग किया गया है। साथ ही इन केन्द्रों से संबंधित समाज सेवकों के दृष्टिकोण, कार्य पद्धति और कठिनाइयों को समझने का भी प्रयास किया गया है।

मध्य प्रदेश के इन दोनों प्रमुख समाज सेवा केन्द्रों के इन अध्ययनों को संयुक्त रूप देकर प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है इससे समाज सेवा के क्षेत्र में लगे लोगों को इन क्षेत्रों के कार्यों की जानकारी मिलेगी, साथ ही समस्याओं को समझने में भी मदद मिलेगी। इन अध्ययनों को पूरा करने एवं इनके प्रकाशन में मध्य प्रदेश सेवक संघ की ओर से आर्थिक सहायता मिली है।

जयपुर,   जवाहिर लाल जैन
17 अप्रेल, 1976   मत्री–निदेशक

1

क्षेत्रीय परिस्थिति

टवलाई गांव मध्यप्रदेश के धार जिले में स्थित है। मनावर तहसील तथा बाकानेर प्रखण्ड के इस गांव में पहुंचने के लिए आगरा-बम्बई राज पथ को खलघाट में छोड़ना पड़ता है। खलघाट से मनावर के रास्ते पर धरमपुरी कस्बे से 10 किलोमीटर की दूरी पर यह गांव बसा है। धार जिले की ऐतिहासिकता की तलाश में "धार" के शाब्दिक अर्थ की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है। धर्म एवं स्वभाव के आधार पर नामकरण का विचार पुराना है। जिस स्थान का या व्यक्ति का धर्म एवं स्वभाव जैसा होता है, लोग उसका नाम वैसा रखते हैं। कभी कभी इसका विलोम भी मिलता है। भारतीय राजतन्त्र के इतिहास में बहादुरी के अनेक उल्लेखनीय उदाहरण हैं। तलवार बहादुरी का प्रतीक माना जाता रहा है। धार का अर्थ है, वह स्थान जहां तलवार की धार सदा चमकती रहती है। इसे तलवार की धार वाली नगरी कहा गया। नाम से ही हमें इसके गुण का भान होता है। धार राज्य में राजपूत, मराठे, मुसलमान सबने अपनी-अपनी तलवार की धार का कौशल दिखाया है। धार राज्य में ही मांडू का किला भी है, जो अपने गौरवपूर्ण इतिहास के लिए प्रसिद्ध है। धार मध्यप्रदेश के मालवा क्षेत्र का प्रमुख केन्द्र माना जाता रहा है। धार नगर से निकटतम रेलवे स्टेशन महू की दूरी 45 कि.मी. है। गुजरी नामक स्थान पर आगरा-बम्बई मार्ग धार से जुड़ता है। धार राज्य पर राजपूत, मराठे और मुसलमान तीनों का अधिकार रहा है। यहां हुमायूं, अकबर, जहांगीर, शाहजहां सहित अनेक प्रसिद्ध बादशाहों ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। धार जिले से सटे हुए जिले

हैं, पश्चिमनीमाड़, झाबुआ, रतलाम, इन्दौर और उज्जैन। भौगोलिक दृष्टि से इस जिले को मुख्य दो भागों में विभाजित कर सकते हैं (1) मालवा का क्षेत्र और (2) निमाड़ का क्षेत्र । मालवा-क्षेत्र की उपजाऊ जमीन यहां की सम्पन्नता की याद दिलाती है । लेकिन यहां का आदिवासी क्षेत्र दरिद्रता का नमूना भी पेश करता है ।

धार जिले के ग्रामीण जीवन पर प्रभुत्व अथवा नेतृत्व का विचार करने पर यह साफ तौर पर दिखाई देता है कि यहां पटेलों का प्रभुत्व मुख्य है । रियासती जमाने में पटेल राज्य और जनता के बीच का माध्यम था और राज्य के सारे कार्य उसके द्वारा किये जाते थे । जैसा कि जनगणना-रिपोर्ट में कहा गया है : "पटेल का कार्य वंशानुगत रूप से चलता था । वह राज्य की ओर से गांव की देखभाल करता था । लगान वसूली तथा राज्य के अन्य कार्य भी उसी के द्वारा किये जाते थे। वह ग्राम समाज का भी प्रमुख माना जाता था और इस नाते वह समाज का सामाजिक नेतृत्व भी करता था । धार गजट के अनुसार इन सेवाओं के बदले उसे लगान का पांच प्रतिशत मिलता था ।[1] इस प्रकार परम्परा से पटेल यहां के जन-जीवन का प्रधान बना हुआ है । जनसंख्या की दृष्टि से सवर्ण हिन्दू जातियों की संख्या कम है । जनसंख्या की दृष्टि से धार जिले में आदिवासियों की स्थिति इस प्रकार है :—

सारणी संख्या—1

विभिन्न तहसीलों में आदिवासियों की जनसंख्या का प्रतिशत[2]

क्षेत्र	कुल का प्र. श.	ग्रामीण	शहर
धार जिला	51.08	55.99	8.52
बदनावर तहसील	26.87	27.76	17.83
सरदारपुरा तहसील	50.37	53.83	14.22
धार तहसील	31.15	38.02	3.56
कुक्षी तहसील	72.73	77.09	13.33
मनावर तहसील	59.15	63.14	7.53

1 सेंसस आफ इण्डिया, 1961, मध्यप्रदेश (धार जिला), पृष्ठ 43, म.प्र. सरकार 1964.

2 जनगणना रिपोर्ट, 1961, पृष्ठ 41, मध्यप्रदेश-सरकार, 1964.

इस प्रकार बदनावर तहसील को छोड़कर जिले के सभी क्षेत्रों में आदिवासियों का बहुमत है। आदिवासी आबादी के साथ पिछड़ी हरिजन जातियों को भी शामिल करलें, तो यह संख्या और अधिक बढ़ जाती है। जिलेके विभिन्न क्षेत्रोंमें हरिजनों की स्थिति इस प्रकार है :—

सारणी संख्या-2

विभिन्न तहसीलों में हरिजनों की जनसंख्या का प्रतिशत[1]

क्षेत्र	कुल का प्र. श.	ग्रामीण	नगर
धार जिला	7.39	8.82	6.00
बदनावर तहसील	9.66	10.17	4.41
सरदारपुरा तहसील	4.22	4.15	5.02
धार तहसील	9.22	10.42	4.20
कुक्षी तहसील	6.61	6.36	10.12
मनावर तहसील	7.13	7.05	8.01

आदिवासी एवं पिछड़ी जाति दोनों को शामिल करने के बाद जिले में इनकी संख्या इस प्रकार आ जाती है :—पूरे धार जिले मे इनका प्रतिशत 64.80 हो जाता है। बदनावर तहसील में ग्रामीण आबादी का 37.93 प्रतिशत भाग इनका है। सरदारपुरा, धार एवं कुक्षी तहसीलों में ग्रामीण आबादी मे इनका हिस्सा क्रमशः इस प्रकार है : 57.98, 44.49 और 83.46। मनावर तहसील में यह प्रतिशत 70 19 है। जनसंख्या की दृष्टि से जिले की जो स्थिति है उसमें प्रायः सभी विधायक और संसद सदस्य आदिवासी चुने जाते है। पर आदिवासी प्रधान इस क्षेत्र के सामाजिक जीवन पर प्रभुत्व सवर्ण हिन्दू जातियों का है।

खेती यहां के जन-जीवन और रोजगार का मुख्य आधार है। गांवों में निवास करने वालों को मुख्य रूप से खेती में काम मिलता है। जमीन के साथ जंगल जुड़ा हुआ है। लोग खेती के काम के साथ-साथ जंगलों में भी रोजगार पाते है। लकड़ी काटना, बेचना, महुआ तथा अन्य जंगली फलों का संग्रह करना रोजगार के

---

[1] जनगणना-रिपोर्ट, 1961, पृष्ठ 41, मध्यप्रदेश-सरकार, 1964.

सहायक साधन हैं। जिले की ग्रामीण आबादी जिन क्षेत्रों से रोजगार प्राप्त करती हैं उसे नीचे की तालिका में देखा जा सकता है।

सारणी संख्या–3

रोजगार की स्थिति[1] वर्ष-1961

कार्य का क्षेत्र	कुल श्रम शक्ति का प्रतिशत जो इस कार्य में लगी है।
1. कृषक के रूप में	76.42
2. कृषक मजदूर के रूप में	18.44
3. खान, जंगल, चारा आदि	1.45
4. गृह निर्माण कार्य	3.75
5. अन्य निर्माण कार्य	0 83
6. निर्माण कार्य	0.55
7. वाणिज्य–व्यवसाय	2.02
8. यातायात	0 30
9. अन्य सेवाएं	5.24

रोजगार की जो स्थिति है उसके कारण ग्रामीण जीवन में जीविका की अनिश्चितता हमेशा बनी रहती है। यदि वर्षा ठीक हुई, तो खेती में काम मिलता है और भूखे पेट को खुराक मिलेगी, इसका भरोसा होता है। खेती मुख्यतः वर्षा पर निर्भर रहने के कारण अकाल की संभावना हमेशा बनी रहती है। वर्षा अनिश्चित रहती है। इतनी बड़ी जनसंख्या का पूर्णतया प्रकृति पर निर्भर रहने का अर्थ है, रोटी के लिए भगवान पर निर्भर रहना।[2]

खेती में काम करने वाले मजदूर प्रायः दो प्रकार की शर्तों के अनुसार कार्य करते हैं: (1) स्थायी रूप से काम करने वाला मजदूर, जिसे हलवाहा कहा जाता है। (2) अस्थायी रूप से काम पर लगाया जाने वाला मजदूर, जो समय-समय पर खेती के काम में लगता है। फसल काटने के काम में लगे व्यक्तियों को आम तौर पर 20 बोझ पर एक बोझ मजदूरी में मिलता है। स्थायी रूप से काम करने वाला

---

1 जनगणना–रिपोर्ट, 1961, पृष्ठ 53, मध्यप्रदेश-सरकार, 1964.

2 1961 की जनगणना-रिपोर्ट के अनुसार।

श्रमिक वार्षिक समझौते के ग्राधार पर काम करता है। इसे ग्रामतौर पर 300) रु० वार्षिक नकद दिया जाता है। इसके ग्रतिरिक्त पहनने के लिए कपड़े ग्रौर जूते भी दिये जाते हैं। इस प्रकार के श्रमिकों को दोनों समय का भोजन भी दिया जाता है। यह मजदूर किसान के यहां साल भर काम करता है ग्रौर घरेलू नौकर की भूमिका भी निभाता है।

धार जिले की जीविका का ग्राधार खेती है ग्रौर उद्योग एवं व्यापार का ग्रभाव है। ग्रागरा-बम्बई-राजमार्ग के ग्रतिरिक्त यातायात के साधनों का पर्याप्त ग्रभाव रहा है। जिले में रेल-यातायात का ग्रभाव होने के कारण भी उद्योगों के विकास में बाधा रही है। यही कारण है कि जिले की 85·86 प्रतिशत ग्राबादी कृषि में एवं कृषि से सम्बन्धित कार्यों में लगी हुई है। लेकिन कृषि की स्थिति भी पिछड़ी हुई है। सिंचाई की व्यवस्था का ग्रभाव रहने के कारण प्रति एकड़ पैदावार कम है ग्रौर ग्रकाल की संभावना हमेशा बनी रहती है। 1961 की जनगणना के ग्रनुसार जिले में 13.45 प्रतिशत लोग साक्षर थे। जनसंख्या में विभिन्न धर्मावलम्बियों की जो स्थिति है, उससे यहां की सामाजिक व्यवस्था की प्रकृति का ग्रन्दाज लगता है। 93.86 प्रतिशत ग्राबादी हिन्दू है ग्रौर 4.82 प्रतिशत मुसलिम ग्राबादी है। जिले के कुछ भागों में मुसलिम ग्राबादी ग्रधिक है। ऐतिहासिक दृष्टि से यहां लम्बे ग्ररसे तक मुसलिम साम्राज्य रहा है। लेकिन मूलतः यहां हिन्दू-साम्राज्य की जड़ें गहरी रही हैं। मराठा ग्रौर राजपूत साम्राज्य के कारण यहां हिन्दू धर्म का कट्टरपन सहज में दिखाई देता है।

बड़े किसान एवं महाजन यहां के जीवन को सबसे ग्रधिक प्रभावित करते हैं। ग्रामीण जीवन में बड़े किसान के पास सामाजिक प्रतिष्ठा के साथ-साथ ग्रार्थिक सम्पन्नता भी है। उच्च जाति के होने के कारण ग्रादिवासियों एवं हरिजनों पर इनका दबदबा इन्हें विरासत में मिला है। जमीन इनके पास ग्रधिक है ग्रौर इस कारण ग्रार्थिक जीवन की कुन्जी इनके हाथ में है। राजपूत तथा ग्रन्य उच्च जातियां परम्परा से ग्रादिवासियों ग्रौर हरिजनों पर ग्रपना ग्रधिकार समझती ग्रायी हैं। पटेल तो राज्य का प्रतिनिधि ही माना जाता रहा है। इस कारण उसका रोबदाब ग्रपने ढंग का ग्रलग ही है। महाजनों का मूल धन्धा वाणिज्य-व्यवसाय है, लेकिन बदलती परिस्थितियों में वे भू-स्वामी भी बन गये हैं। दूर देहातों में साप्ताहिक बाजार के माध्यम से महाजन जन सामान्य की ग्रावश्यकता की वस्तुग्रों की खरीद-बिक्री का काम करते हैं। बदनावर-क्षेत्र के महाजनों के बारे में जानकारी प्राप्त करने पर कुछ उपयोगी बातें सामने ग्रायी हैं। जैसे, महाजन वर्षों से बाजार के माध्यम से व्यापार का कार्य कर रहे हैं। महाजनों की कई पीढ़ियां इस व्यवसाय में लगी हैं।

लेकिन अब इनके स्वामित्व में फर्क आया है। पहले महाजन प्राय: साप्ताहिक बाजार में सामान ले जाकर खरीद-बिक्री का काम करता था और शाम को कस्बों में, जहाँ उसका घर होता है लौट आता था। परन्तु बाद में धीरे-धीरे ये लोग गांवों में ही बसने लगे। टवलाई के पास लुन्हेरा गांव में बाजार के कारण अनेक महाजन स्थायी रूप से बस गये हैं। इसमें से कई राजस्थान या अन्य राज्यों से आये हैं। अब ये यहां के निवासी हो गये हैं। यह प्रक्रिया जंगलों के कटने और यातायात के साधनों के विकास के साथ-साथ शुरू हुई है।

यहाँ सवाल महाजन या किसान का ऐसे क्षेत्र में, जहाँ पहले आदिवासी थे, वहाँ बसने-भर का नहीं है। सवाल यह है कि उनकी मनोवृत्ति में किस प्रकार का फर्क आया है तथा उसका प्रभाव वहां के मूल निवासियों पर क्या पड़ा है? संक्षेप में इन बातों को इस रूप में गिना सकते हैं।

(क) जो महाजन या किसान इन गांवों में बसे हैं उन्होंने बड़ी मात्रा में जंगल की (सरकारी) या आदिवासी की जमीन खरीदी है। यह जमीन नाम-मात्र कीमत पर ली गई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि मूल निवासी यानी यहाँ का आदिवासी धीरे-धीरे भूमिहीन होता गया है।

(ख) जंगल काटने, जमीन पर कब्जा करने और गलत तरीकों से जमीन लेने की जो स्थिति रही है, इस कारण जंगल तो कटे ही हैं, साथ ही ऐसी जमीन, जो आदिवासी को मिलनी चाहिये थी, बाहर के लोगो के हाथ में चली गयी। जंगल, जो कि आदिवासियों की जीविका का मुख्य आधार था, वह उनसे छिन गया और आदिवासी महाजनों और किसानों का गुलाम बन गया।

(ग) महाजन अपने व्यवहार से आदिवासी की आय का अधिक-से-अधिक भाग स्वयं ले सके इसके लिए उसका गांव में रहना अधिक लाभप्रद है। आदिवासियों को कर्ज देना, जेवर गिरवी रखना, जमीन की खरीद बिक्री करना आदि कार्य गाँव में रहकर अधिक अच्छी तरह किये जा सकते हैं। अतः वह गाँव में आकर बसा। महाजनों के यहां बिना किसी लिखा पढ़ी के काफी मात्रा में जेवर गिरवी रखा जाता है। सारा काम विश्वास के नाम पर होता है। इससे महाजन असीमित लाभ कमाता है। महाजन हिसाब में अक्सर गड़बड़ी करके, गिरवी वापसी से मुकर के और कटकी चोरी आदि के जरिए लाभ कमाता है। स्थिति यह है कि आदिवासियों के शरीर से उतर कर जेवर महाजनों की तिजोरियों में इकट्ठा होता रहता है।

(घ) इस सबके कारण महाजनों को सामाजिक प्रभुत्व, नियंत्रण और

राजनीतिक नाम जिस रूप में मिलता है, वह विशेष रूप से आकर्षक है। आमतौर पर यह कहा जाता है कि सरकार की ओर से आदिवासियों का क्षेत्र सुरक्षित क्षेत्र माना गया है, पर वास्तव में यहाँ के आदिवासी तो सवर्णों के हाथ के खिलौने के समान हैं।

यहाँ यह भी उल्लेख कर देना सामयिक होगा कि शोषण की यह प्रक्रिया महाजनों और बड़े किसानों तक ही सीमित नहीं है। यह साफ तौर पर देखा जा सकता है कि जो आदिवासी अन्य आदिवासियों से आगे बढ़ गया है, अधिक सम्पन्न और शिक्षित हो गया है, वह भी अन्य आदिवासियों से वही व्यवहार करता है जो महाजन या बड़े किसान करते हैं।

2

ग्रामभारती : एक परिचय

ग्रामभारती, संस्थान जिस स्थान पर बसा है, वह स्थान टवलाई ग्राम का एक हिस्सा है। टवलाई ग्राम में चार छोटे गांव (पुरे) आते हैं। इन गांवों की स्थिति इस प्रकार है :—

सारणी संख्या –4

ग्राम–परिचय

ग्राम	गांव की प्रकृति	परिवार संख्या
1. मोरीपुरा	पूर्ण आदिवासी गांव	40
2. रावतपुरा	पूर्ण आदिवासी गांव	30
3. मेड़ा	मिश्रित जातियां	42
4. रहमानपुरा	पूर्ण आदिवासी गांव	25
योग :—		137

टवलाई विभिन्न जातियों का गांव है। जैसा कि ऊपर की सारणी में स्पष्ट है, टवलाई के चार पुरों या टोलों में से तीन में केवल आदिवासी परिवार रहते हैं। टवलाई के मेड़ापुरे में जो कि सड़क के दोनों किनारे बसा है, सभी जातियों के लोग

रहते हैं। यहां जाट, व्यापारी (कलाल), मनाकर, बलाई, तेली, मालाकार, सुनार, कुम्हार, चमार आदि जातियों के परिवार रहते हैं। आदिवासियों में अनेक गोत्र हैं। भिलाला जाति के आदिवासियों में मुख्य गोत्र हैं :—मोरी, मुजालदा, बासवाला, जमरापुरा और रावत। रावतपुरे में सभी परिवार रावतों के हैं। रावत और बासवाला गोत्र के आदिवासियों में शराब और मांस का प्रचलन नहीं है, जबकि अन्य गोत्रों के लोग इनका भरपूर उपयोग करते हैं। गेटा टोले में कलामिया गोत्र के लोग भी रहते हैं।

मनावर तहसील में या यों कहें कि समूचे धार जिले में ही आदिवासियों में भिलाला कहे जाने वाले आदिवासियों का बाहुल्य है। इनके बारे में बहुत जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी। इतना स्पष्ट है कि भिलाला भील से भिन्न है। इस विभिन्नता के बावजूद भिलाला भील के समीप भी हैं। भिलाला मिश्रित जाति प्रतीत होती है। आम मान्यता यह है कि भिलाला जाति भील स्त्री और राजपूत पुरुष के साथ के विवाह का परिणाम है। भिलाला जाति के सम्बन्ध में 1931 की भारतीय जनगणना रिपोर्ट में श्री सी.एस. वेंकटाचार्य के अनुसार भिलाला आदिवासी का भीलों से निकट का सम्बन्ध है। विन्ध्य और सतपुड़ा के क्षेत्र में इनका फैलाव है। इनकी उत्पत्ति भील एवं राजपूत दोनों के खून के मिश्रण से हुई है। राजपूतों की स्थिति उच्च रही और उनका संबंध शासनकर्ताओं से रहा। राजपूत लोग दिल्ली से आकर उदयपुर और चित्तौड़ में बसे और वहां उन्होंने राज्य स्थापित किया। जब सन् 1303 में अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया तो वहां के राजपूतों को विन्ध्य के जंगलों में शरण लेनी पड़ी। कालांतर में इन राजपूतों ने वहां की भील स्त्रियों से विवाह संबंध कायम किये। इनकी संतान भिलाला कही जाने लगी। इनकी सामाजिक स्थिति भीलों से उच्च मानी गई। भिलाला आदिवासी मुख्य रूप से धार, झाबुआ, पश्चिम निमाड़, सिहोर और रायसेन जिलों में पाये जाते हैं। सिहोर एवं रायसेन जिलों में इनकी संख्या काफी कम है। इनका मुख्य धन्धा कृषि है।[1] कुछ लोगों का यह भी मानना है कि मांडू पर मुसलमानों का आक्रमण होने और उनका राज्य स्थापित होने के बाद वहां के राजपूत जंगलों में शरण लेने गये और वहीं भील स्त्रियों से उनके विवाह सम्बन्ध स्थापित हुए। इस क्षेत्र में भिलालों की संख्या सर्वाधिक है और आदिवासी के नाम से इन्हें ही जाना जाता है। आज ये लोग रहन-सहन की दृष्टि से सामान्य हिन्दू जाति के काफी करीब आ चुके हैं। फिर भी सौर-कमान आज भी इनके पास है। पुराना जीवन छोड़ना और नहीं पन को अपनाना, इस बात पर निर्भर है कि

1 जनगणना रिपोर्ट, 1961.

बाहरी प्रभाव कितना पहुंचा है। टवलाई क्षेत्र में बाहरी जीवन का प्रभाव सहज ही देखा जा सकता है।

ग्रामभारती, टवलाई की स्थापना की अपनी कहानी है। भिलाला प्रधान इस आदिवासी क्षेत्र में ग्रामभारती आश्रम की स्थापना किसी सुनियोजित योजना का परिणाम न होकर संयोग का परिणाम है। वैसे मध्य भारत गांधी स्मारक निधि का मध्य भारत क्षेत्र में इस प्रकार के आश्रम की स्थापना का विचार था। लेकिन वह आश्रम टवलाई में स्थापित हुआ, यह एक संयोग ही है। टवलाई ग्राम के प्रथम एवं मुख्य सहयोगी, जिन्होंने आश्रम को जमीन दी, श्री फूलचन्द पटेल का कहना है कि एक दिन खादी ग्रामोद्योग कमीशन के अधिकारी श्री रानाडे मनावर जाते हुए पानी पीने के लिए हमारे यहां रुके, उन्होंने इस क्षेत्र में खजूर के काफी पेड़ देखकर के यहां ताड़ गुड़ उद्योग के विकास की बात मेरे सामने रखी। जैसा आश्रम की रिपोर्ट में कहा गया है :— यहां के खजूर के पेड़ों को देखकर श्री रानाडे ने टवलाई में ताड़ गुड़ केन्द्र चलाने का निश्चय किया। इस काम के लिए गुजरात के प्रिय कार्यकर्त्ता श्री अखिलचन्द्र पण्ड्या को टवलाई भेजा गया। श्री पण्ड्या ने सपरिवार टवलाई रह कर यहां के 15 लोगों को ताड़-गुड़ का प्रशिक्षण दिया। उन्होंने क्षेत्र में सर्वोदय के अनुकूल वातावरण बनाया। टवलाई के श्री फूलचन्द पटेल ने क्षेत्र के लोगों से मिलकर जनवरी 1955 में गांधीजी के रचनात्मक कामों के साथ सर्वोदय विचार को समझने के लिए गांव वालों के लिए शिविर का आयोजन किया। इस शिविर में धार और निमाड़ जिले के प्रमुख कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। शिविर के अन्त में टवलाई में एक आश्रम की स्थापना की बात चली। उसी समय गांव के तत्कालीन पटेल श्री फूलचन्द ने अपनी जमीन में से 35॥ बीघा जमीन आश्रम के लिए दान देने का संकल्प किया। यह विषय केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि के तत्कालीन मन्त्री श्री धोत्रे जी के समक्ष रखा गया। श्री धोत्रे जी और श्री अण्णासाहब सहस्त्र बुद्धे ने टवलाई आकर स्थान देखा और यहां मध्य भारत गांधी–स्मारक निधि की ओर से आश्रम की स्थापना का निर्णय लिया।

आश्रम की स्थापना में प्रारंभ से ही श्री फूलचन्द पटेल का विशेष सहयोग रहा। उन्होंने स्वयं अपनी जमीन का बड़ा हिस्सा दान तो दिया ही, इसके अतिरिक्त आश्रम के विभिन्न कार्यों मे भी उनका पूरा सहयोग रहा। शुरू में कुछ समय तो वे आश्रम के कार्यकर्ता भी रहे। गांव के अन्य लोगों ने भी जमीन तथा अन्य प्रकार का सह–योग दिया। उक्त जमीन के अतिरिक्त सड़क से लगी 6॥ बीघा जमीन गांव के दो आदिवासी परिवारों ने आश्रम के लिए दी। इस स्थान पर आश्रम के कई भवन बने हैं। एक अन्य व्यक्ति ने थोड़ी जमीन मोरीपुरे के पास दी, जहां आश्रम का बाल-

वाड़ी भवन बना है। इस प्रकार विभिन्न व्यक्तियों के सहयोग से आश्रम के लिए जमीन प्राप्त हुई। स्थापना का जो संदर्भ एवं सहयोग का जो स्वरूप रहा, उसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि गांव के लोगों ने ग्राम-सेवा के लिए खुले दिल से आमंत्रण दिया।

आश्रम की मुख्य जिम्मेदारी गांधी स्मारक निधि की मध्यभारत-शाखा के तत्कालीन संचालक श्री काशिनाथ त्रिवेदी ने ली। आश्रम के कार्यों को मुख्य दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। एक, संस्थात्मक रूप से किया जाने वाला कार्य। इसमें बालवाड़ी, विद्यालय, पंच प्रशिक्षण, सघन विकास क्षेत्र, सहकारी समिति और खेती-गोपालन आदि मुख्य हैं। दो, ग्रामीण जीवन को सीधे प्रभावित करने वाले कार्यक्रम। जैसे-शिविर-सम्मेलन, पदयात्रा, चिकित्सा-स्वास्थ्य रक्षा, निर्माण-कार्य, सामाजिक सुधार, नशाबंदी, ऋण-निवारण, आदालत-मुक्ति आदि।

1 मई 1955 को टवलाई में मध्य भारत गांधी स्मारक निधि के ग्राम सेवक और ग्रामवासियों का 15 दिनों का एक शिविर हुआ। इस शिविर से आश्रम में निर्माण-कार्य का प्रारंभ हुआ। शिविर काल में सामूहिक श्रमदान से कुएं की खुदाई शुरू हुई। इसी के साथ यह स्थान मध्य भारत में रचनात्मक कार्यों के प्रशिक्षण का और मार्गदर्शन का केन्द्र भी बन गया। गांधी स्मारक निधि ने इस आश्रम को अपनी प्रवृत्ति के रूप में चलाना प्रारंभ किया। टवलाई-क्षेत्र की सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति के अध्ययन के बाद विचार यह बना कि क्षेत्र में व्यापक लोकशिक्षण के साथ क्षेत्र की जनता के विकास का काम आगे बढ़ाना चाहिये। रोग, अशिक्षा, कर्ज, गरीबी, गुलामी, बेकारी और अन्धविश्वास यहां की स्थायी समस्याएं थी। इनके निवारण के लिए आश्रम की ओर से कई कार्यक्रम हाथ में लिए गये। वैसे प्रारंभ में संस्थापकों के मन में बुनियादी तालीम के काम को पूर्व बुनियादी से लेकर उत्तर बुनियादी तक बढ़ाने की बात भी थी। लेकिन बाद में समग्र विकास के कार्यक्रम को हाथ में ही लेना अधिक उपयोगी समझा गया। फिर भी बुनियादी तालीम प्रारंभ से ही आश्रम की एक मुख्य और प्रिय प्रवृत्ति रही है।

आश्रम की विभिन्न प्रवृत्तियों का प्रारंभ विभिन्न वर्षों में हुआ। बालवाड़ी तो प्रारंभ से ही चलपड़ी और इस दृष्टि से यह मानना होगा कि यहां नयी तालीम की शुरुआत आश्रम की स्थापना के साथ ही हुई। लेकिन कुमार-मन्दिर के नाम से विधिवत और नियमित रूप से विद्यालय का प्रारंभ 26 जनवरी 1959 को हुआ।

3

ग्रामीण ऋण और ऋण-मुक्ति

भारत के गांवों में ऋण ग्रस्तता का अध्ययन करने वाले विद्वानों ने ठीक ही कहा है कि भारतीय ग्रामीण ऋण में ही जन्म लेता है और जब मरता है, तो वह अपने कर्ज के बड़े भार को अपनी भावी पीढ़ी पर रख जाता है। सामान्यतया उन पर दो प्रकार का कर्ज रहता है। एक, अपने पूर्वजों से प्राप्त कर्ज और दो स्वयं द्वारा लिया गया कर्ज। हमारे देश में गांव में बसने वाले लोग कर्ज के अभ्यस्त हैं। लेकिन आदिवासी क्षेत्र में कर्ज की खास परिस्थिति है। यहां कर्ज शोषण और अत्याचार का माध्यम है। यही स्थिति अन्य क्षेत्रों में हरिजनों, पिछड़ी जातियों और गरीब समुदायों की भी होती है। आदिवासी क्षेत्र में महाजनों और अन्य सवर्ण जाति के के लोगों के बसने में एक बड़ा आकर्षण कर्ज देने का धन्धा भी है।

टवलाई क्षेत्र में अनेक ऐसे गांव है, जहां साप्ताहिक बाजार लगते हैं। लुन्हेरा, बाकानेर, धरमपुरी आदि स्थान साप्ताहिक बाजारों की दृष्टि से मुख्य हैं। पास-पड़ोस के गांव और दूर के गावों के लोग भी इन बाजारों से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। लुन्हेरा के बाजार का निरीक्षण करने के बाद यहां के बाजार में खरीद बिक्री की और कर्ज लेने-देने की प्रक्रिया का नमूना सामने आया। ऋण-व्यवहार की सैद्धांतिक गहराइयों पर विचार किए बिना मोटे तौर पर यहां के बाजार के व्यवहार को नीचे लिखे वर्गों में बांट सकते है :—

1. ऐसे लोग, जो खरीददार की हैसियत से जाते है। और खरीददार की भांति

वस्तुओं की कीमत चुकाते हैं।

2. ऐसे खरीददार, जो अपनी वस्तु बेचने जाते है—जैसे, मुर्गा बकरा, लकड़ी, अनाज, मिट्टी के बरतन आदि और इनके बदले में वे अपनी जरूरत की चीजें खरीदकर ले जाते हैं। इस प्रकार के लोग क्रेता और विक्रेता दोनों की भूमिका निभाते हैं। लेकिन देखा यह गया कि इस प्रकार के लोग स्थानीय बाजार में ठग जाते हैं। वे अपना माल सस्ता बेचते हैं और महाजन से महंगी वस्तु खरीदते हैं। इस प्रकार के लोग वास्तव में महाजन की भूमिका नहीं निभाते उलटे ये अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए अपनी चीज किसी भी भाव में बेचने को मजबूर होते हैं।

3. ऐसे लोग, जिन्हें बाजार-भाव की जानकारी नहीं रहती है। महाजन उन्हें जिस भाव से देता है, वे उसी भाव से वस्तु खरीद लेते हैं, महाजन अपने व्यवहार द्वारा इनसे मनमाना लाभ प्राप्त करता है।

4. यहां ऐसे लोगों की संख्या पर्याप्त है, जो इन बाजारों में महाजन के पास अपने प्रश्न लेकर आते हैं। ये लोग महाजनों से रुपये उधार लेते हैं। कर्ज लेकर अपने महाजन की दुकान से और उसके पास न हुई तो दूसरी दुकान से अपनी जरूरत की वस्तुएँ खरीदते हैं। सामान्य आदिवासी इसी श्रेणी में आता है। ऐसा पाया गया कि एक व्यक्ति किसी एक ही महाजन से सम्बन्ध नहीं रखता, बल्कि वह अनेक महाजनों से लेन-देन का सम्बन्ध रखता है। इससे उसे बड़ा लाभ यह मिलता है कि उस पर किसी एक महाजन का भारी कर्ज नहीं पड़ पाता और एक के इनकार करने पर या उसका ज्यादा कर्ज हो जाने पर दूसरे महाजन से कर्ज प्राप्त हो जाता है।

यदि कर्ज लेने वालों को कर्ज लेने के कारणों की दृष्टि से विभाजित करना चाहें, तो उनका यह क्रम बनता है :—

1. रोज की जरूरत को पूरा करने के लिए लिया गया कर्ज।

2. सामाजिक व्यवहार के लिए लिया गया कर्ज। इन व्यवहार में जन्म, विवाह, मृत्यु आदि है। इसके अतिरिक्त त्योहारों पर भी लोग कर्ज लेते हैं।

3. आकस्मिक घटना के कारण लिया गया कर्ज।

क्षेत्र के आदिवासियों का आर्थिक आधार बिल्कुल खोखला है। वे लोग इतने सक्षम नहीं हैं कि त्योहार के लिए बचत कर सकें। दूसरी दृष्टि से देखें तो यह कहना होगा कि ये लोग कर्ज लेने के इतने आदि हो गये हैं कि अपनी हर छोटी-मोटी जरूरत के लिए कर्ज लेने को तैयार हो जाते हैं। फिर इनके सामने कर्ज लेने की

कुछ मजबूरियां भी होती हैं। ऐसे अनेक अवसर आते हैं जिन पर ये कर्ज लेने से बच सकते हैं, लेकिन प्राय: ये ऐसा नहीं करते। सामाजिक व्यवहार के नाम पर जो कर्ज लिया जाता है, उसमें कमी की जा सकती है। कर्ज लेने की इनकी जो मजबूरी और मनोवृत्ति है उसे महाजन अच्छी तरह समझता है। आदिवासी समाज कर्ज से परेशान है, लेकिन उसके जीवन का चक्र कुछ इस प्रकार घूमता है कि वह इससे मुक्त भी नहीं हो पाता है।

आदिवासी क्षेत्र में कर्ज-मुक्ति की दृष्टि से कई प्रकार के प्रयास किये जाते रहे हैं। सहकारी समितियां, ऋणदायी सहकारी समितियां, सरकार के कानून और समाज-सेवी संस्थाओं के प्रयास इनमें मुख्य हैं। मध्यप्रदेश सरकार ने ग्रामीण ऋण की स्थिति को देखते हुए इस सम्बन्ध में कानून भी बनाया है। राज्य सरकार की ओर से आदिवासी ऋण निवारण योजना की पृष्ठभूमि में कहा गया है :—कतिपय सर्वेक्षण से यह मालूम हुआ कि स्थानीय महाजनों और साहूकारों द्वारा आदिवासियों की अशिक्षा व गरीबी का फायदा उठा कर उन्हें एक ऐसे दोषपूर्ण जाल में फसा लिया जाता है कि जिससे न केवल उनकी आर्थिक उन्नति असम्भव हो जाती है, बल्कि साथ ही साथ उनकी आने वाली पीढ़ियां भी इस कर्ज से कभी छुटकारा नहीं पा सकती हैं। इन बातों को ध्यान में रखते हुए आदिवासी भाइयों को पुराने कर्जों से छुटकारा दिलाने के लिए इस योजना को कार्यान्वित किया जा रहा है ताकि वे प्रगति के पथ पर कदम बढ़ा सकें।[1]

इस योजना को पूरे मध्यप्रदेश में व्यापक रूप से प्रभावकारी बनाने का प्रयास किया गया। यह एक ऐसा काम है, जिसका सम्बन्ध ग्रामीण समाज के संरचनात्मक पक्ष से है। महाजन और गांव का सामान्य व्यक्ति दोनों एक दूसरे से इस प्रकार जुड़े हुए हैं कि महाजन के खिलाफ या महाजन के अत्याचारों के खिलाफ मामूली आदमी कुछ भी करने की हिम्मत नहीं रखता। जब यह कानून बना तो समाज सेवा में लगे लोगों ने इसके माध्यम से शोषण और अन्याय मुक्ति की दिशा में प्रयास आरम्भ किया।

यह योजना 15 अगस्त, 1963 से राज्य के समस्त अनुसूचित क्षेत्रों में लागू कर दी गयी थी। इसके फलस्वरूप अनुसूचित क्षेत्रों में 27 नवम्बर, 1963 से 'डेट रिलीफ कोर्टस्' (ऋण निवारण न्यायालयों) की स्थापना की गयी। इन न्यायालयों का संचालन निम्न प्रकार से किया गया :—

---

1 ऋण निवारण योजना, म. प्र. सरकार.

1. आदिवासियों के प्रति 31 दिसम्बर, 1955 तक जितना भी कर्ज होगा उस कर्ज के निपटारे के लिए साहूकारों को 27 नवम्बर, 1963 तक से साठ दिन के भीतर अपना दावा इन अदालतों के सामने पेश करना अनिवार्य होगा।

2. अदालत इन दावों की सूचना सम्बन्धित आदिवासियों को अपना पक्ष पेश करने के लिए देगी।

3. अदालत में वकील किसी भी पक्ष की ओर से नहीं खड़े हो सकते। साहू-कारों को या आदिवासियों को स्वयं, अथवा अपने रिश्तेदारों या किसी ऐसे व्यक्ति के द्वारा जिसे इस सम्बन्ध में अधिकार दिया गया हो, मामले में भाग लेना होगा।

4. अदालत दोनों पक्षों की सुनवाई करके पुराने कर्जों में योजना सूची के आधार पर कमी कर देगी और ऐसे कम किए गये मूलधनों पर निर्धारित दरों के अनुसार ब्याज की रकम भी निश्चित कर देगी।

5. इस तरह निर्धारित की गयी रकम की वसूली आदिवासियों से किश्तों में जिलाध्यक्ष महोदय द्वारा की जावेगी। रकम की वसूली करते समय आदिवासियों की आर्थिक स्थिति, उनकी आमदनी इत्यादि का पूरा-पूरा ध्यान रखा जावेगा।

6. इस योजना के लागू होते ही आदिवासियों और साहूकारों के बीच पुराने कर्ज की वसूली के सम्बन्ध में जो भी मामले दीवानी अदालतों में चल रहे होंगे वे बंद कर दिये जावेंगे और वे समस्त मामले निपटारे के हेतु डेट रिलीफ कोर्टस् को भेज दिये जावेंगे।

7. यदि साहूकारों ने अपना दावा "डेट रिलीफ कोर्टस्" के समक्ष निर्धारित समय में नहीं पेश किया, तो यह समझा जावेगा कि ऐसे सभी कर्जों की अदायगी पूर्ण रूप से हो चुकी है और फिर साहूकार उन कर्जों से संबंधित कोई भी रकम आदि-वासियों से किसी प्रकार वसूल नहीं कर सकेगा।

8. कर्जों का निपटारा अदालतों द्वारा हो जाने पर या साहूकार द्वारा अपना दावा निर्धारित समय पर पेश न करने पर साहूकार आदिवासियों से इन कर्जों के नाम पर कोई भी रकम वसूली करता हुआ पाया गया, तो उनके प्रति दमन-कारी फौजदारी मामला चलाया जावेगा और सत्य पाया जाने पर उसे 6 मास की सजा या 1,000 रु० का जुर्माना या दोनों सजायें एक साथ दी जा सकेंगी।[1]

---

[1] उपर्युक्त स्रोत से, 1964.

इस कानून के बावजूद आज भी आदिवासी समाज पर साहूकारों का कर्ज मौजूद है। जिन क्षेत्रों में इस कानून को आधार बनाया गया, वहां तत्काल जनता को कुछ लाभ मिला। परन्तु आम धारणा यह है कि साहूकार ने इस कानून से बचने का रास्ता निकाल लिया। सामान्य स्थिति यह बनी कि साहूकारों ने अपना दावा कोर्ट में प्रस्तुत नहीं किया। लेकिन इसके बावजूद आदिवासियों से उनका लेन-देन चलता रहा। काफी साहूकारों ने कानूनी अवधि से बचकर कर्ज के नये कागजात तैयार कर लिये। आदिवासियों को किसी प्रकार का कोई लिखित दस्तावेज नहीं दिया जाता है। साहूकार अपने पास तो सारे प्रमाण रखता है, परन्तु आदिवासी को कुछ नहीं देता।

टवलाई आश्रम की ओर से साहूकारों के शोषण से मुक्ति और कर्ज निवारण की दृष्टि से कुछ प्रयास किया गया। आश्रम के द्वारा इस दिशा में किये गये प्रयासों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है :–

1. सामाजिक जागृति एवं लोकशिक्षण के द्वारा कर्ज की स्थिति से मुक्ति दिलाने का प्रयास।

2. सरकार के उक्त कानून के अन्तर्गत किये गये प्रयास।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, आम आदिवासी अपने सामाजिक रीति-रिवाजों के कारण कर्ज का शिकार होता है। आश्रम आरंभ से ही यह मानता रहा है कि आदिवासी समाज में जागृति आये बिना उनका शोषण बंद नहीं हो सकता है। इसके लिए आदिवासियों में आत्मविश्वास जगाने के साथ ही उन्हें सामान्य नीति नियमों की जानकारी देनी होगी और उनमें अनावश्यक खर्च को कम करने की वृत्ति भी विकसित करनी होगी। आश्रम की ओर से इस दिशा में कई प्रकार के प्रयास किये जाते रहे हैं, जैसे शिविर, सम्मेलन, व्यक्तिगत रूप से समझाना आदि। इन्हीं कार्यक्रमों के क्रम में सन् 1956 में टवलाई, एकल्यावग्ड़ी, घनोरा और करोंदिया में चार आदिवासी सम्मेलन हुए। प्रत्येक सम्मेलन में आस-पड़ोस के तीस-चालीस गांवों के लोग शामिल हुए। इन सम्मेलनों में मृत्यु भोज बंद करने, दहेज कम करने, "आणे" में कम लोग ले जाने और लड़कियों को भगाने पर प्रतिबंध लगाने जैसे संकल्प लिये गये। इस प्रकार के सम्मेलनों का और उनमें लिये गए संकल्पों का आदिवासी समाज पर अच्छा प्रभाव पड़ा। इससे उनमें इन कामों के लिए कर्ज लेने की वृत्ति में कमी आयी। 1956 से 1960 के बीच इस क्षेत्र में इस प्रकार के करीब पचास सम्मेलन हुए। सन् 1960–61 में ऊटावंद गांव का आर्थिक सर्वेक्षण किया गया था। इस सर्वेक्षण से यह जानकारी मिली कि यहां के साहूकार 1,000 प्रतिशत तक ब्याज वसूल करने से नहीं चूकते हैं।

आश्रम की ओर से शिविरों और सम्मेलनों के अतिरिक्त पदयात्राओं का भी आयोजन किया जाता रहा है। पदयात्राओं का मुख्य उद्देश्य व्यापक सम्पर्क के द्वारा विचार प्रचार के माध्यम से जनता को उसकी ज्वलंत समस्याओं के विषय में शिक्षित करना होता है। इससे गांव के लोगों में हिम्मत के साथ आत्मविश्वास भी आता है। आश्रम में लोगों द्वारा लाये गये प्रश्नों को सुलझाने का प्रयास भी किया जाता रहा है। कर्ज संबंधी अनेक मामले सामने आये और सरकार के सहयोग से उन्हें सुलझाया गया। कर्ज के झगड़ों का सुलझाने के सिलसिले में यह आवश्यकता महसूस की गयी कि इस दिशा में कुछ व्यावहारिक कदम उठाये जाने चाहिये, जिनसे आदिवासी समाज साहूकारों के चंगुल से मुक्त हो सके।

ग्रामीण जीवन में ऋण ग्रस्तता को समाप्त करने के प्रयास में सहकारी समितियां उपयोगी भूमिका निभा सकती है। इसी संदर्भ में सन् 1956 में टबलाई गांव के आस-पास के 30 गांवों के 205 सदस्यों की एक सहकारी समिति गठित की गयी। आरम्भ में शेयर पूंजी 2,340) रु. जमा हुई। शुरू में इस सहकारी समिति के गठन में क्षेत्र के साहूकारों ने बाधा डालने का प्रयास किया। 1957 में टबलाई की बहुकार्यकारिणी सहकारी समिति का कार्य विधिवत आरम्भ हुआ। समिति की ओर से मुख्यतः कृषि संबंधी कामों में मदद करने पर बल दिया गया। उत्पादन कार्यों के लिए कर्ज, खाद, बीज आदि का वितरण समिति का मुख्य कार्यक्रम रहा। विभिन्न वर्षों में

सारणी संख्या–5

बहु कार्यकारिणी सहकारी समिति टबलाई : कार्य की स्थिति

वर्ष	शेयर पूंजी	कर्ज वितरण	खाद वितरण	बीज वितरण	सदस्य संख्या
1957	2,340)-	2,300)	—	—	205
1958	4,000)-	4,700)-	—	—	202
1959	7,403)-	84,270)-	—	—	348
1960	10,202)-	1,30,000)-	—	—	261
1961	26,446)-	1,66,000)-	100 मन	620 मन	509
1962	33,000)-	1,84,000)-	150 बोरी,	500 मन	509
1963	33,000)-	1,33,265)-	200 ,,	35,587 कि.	509
1964	33,000)-	80,750)-	262 ,,	2,300 ,,	509

समिति की पूंजी तथा कार्य की जो स्थिति रही, उसे तालिका में देखा जा सकता है।

इस सहकारी समिति ने 1964 तक अपने सदस्यों की सेवा की और इससे आदिवासी समाज को आर्थिक आधार मिला। यहां यह स्वीकार करना चाहिए कि इस सहकारी समिति की अपनी एक सीमा थी और उस सीमा के अन्तर्गत ही उसने सेवा की। कालांतर में यह समिति अपने कार्य को आगे नहीं बढ़ा सकी और कतिपय कारणों से इसमें शिथिलता आती गयी।

क्षेत्र के लोगों ने यह महसूस किया कि यदि सहकारी समिति एक दूकान चलाये, तो साहूकारों के शोषण से मुक्ति में कुछ मदद मिल सकती है। वस्तुओं की खरीद बिक्री में शोषण की गुंजाइश अधिक रहती है। इसी उद्देश्य से सन् 1957 में टवलाई की बहुकार्यकारिणी सहकारी समिति ने अपनी दूकान चलाने का निर्णय लिया। इस दूकान में गांव वालों के नित्य के उपयोगी की वस्तुएं रखी जाती थीं। बाद में दूकान ने कच्चे माल की खरीद-बिक्री का काम भी अपने हाथ में लिया। आरम्भ के तीन वर्षों में अपनी दूकान में व्यापार की स्थिति इस प्रकार रही:—1958–59 में 94,000) रु० का लेन-देन किया गया, 1959–60 में 1,22,941) रु० का और 1960–61 में 1,40,000) रु. का लेन-देन किया गया।

महाजन और ग्रामीण जनता के बीच जिस प्रकार का संबंध है, उसका विश्लेषण करने पर यह साफतौर देखने में आता है कि जरूरतमंद समाज आर्थिक रूप से महाजन पर निर्भर करता है। महाजन और जनता के बीच के संबंधों का एक अध्ययन कुमारप्पा ग्रामस्वराज्य संस्थान की ओर से किया गया है। उस अध्ययन से उक्त बात की पुष्टि होती है। उक्त अध्ययन में कहा गया है कि ग्रामीण विनिमय का थोड़ा भी अध्ययन करने से साफ जाहिर होता है कि महाजन ग्रामीण जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित करता है। नित्य के उपयोग की चीजों से लेकर जीवन के स्थायी कार्यों तक जैसे, शादी, त्यौहार, मकान आदि–सब पर महाजन के रुख एवं सहयोग का प्रभाव पड़ता है।[1] टवलाई क्षेत्र में महाजन एवं सामान्य नागरिक की स्थिति इससे भिन्न नहीं है। बल्कि आदिवासी क्षेत्र होने के कारण यहां आपसी संबंधों का और शोषण का रूप अधिक साफ दिखाई देता है।

आश्रम के द्वारा ऋण मुक्ति के लिए जो प्रयास किये गये उस पर से ये बातें

1 नाती की दाणी : व्यापार और शोषण के कुछ पहलुओं का अध्ययन, पृष्ठ 29 कुमारप्पा ग्रामस्वराज्य संस्थान, जयपुर 1969

कही जा सकती है। (1) यहां के आदिवासियों में आत्म विश्वास आया है। (2) अन्याय का प्रतिकार करने की हिम्मत आयी है। (3) सामाजिकता के नाम पर किया जाने वाला खर्च कम हुआ है। (4) ऋण की समस्या के समाधान के लिए सहकारी समिति के माध्यम से मदद करने का प्रयास हुआ है। (5) सरकारी कानून के माध्यम से काफी लोगों ने महाजन के शोषण से मुक्ति पायी है। (6) लेकिन आज भी कठिन आर्थिक परिस्थिति के कारण आम लोगों को साहूकारों से मुक्ति नहीं मिल पायी है। शोषण अवश्य कम हुआ है। (7) साहूकारों के कर्ज व्यवहार का कोई विकल्प अभी तक नहीं मिल सका है।

4

ग्रामीण शोषण की परिस्थिति

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो ग्रामीण जीवन में जिस प्रकार की आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था रही है, उसमें समाज का एक वर्ग हमेशा ही शोषण का शिकार रहा है। जिसके पास अधिक जमीन है या जो ऊँची जाति का है, वह अपने से गिरी हुई स्थिति के लोगों का शोषण करता है। शोषण का प्रश्न उस समय अधिक महत्व का हो जाता है, जब हम लोकतन्त्र, सामाजिक न्याय और आर्थिक समानता का विचार स्वीकार कर लेते हैं। शोषण के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए हम उसे इस रूप में विभाजित कर सकते हैं:—

1. संस्थात्मक शोषण : जब कोई सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवहार संस्थात्मक रूप ले लेता है, तो उसमें शोषण का अंश आ जाता है। जैसे, किसी गांव में या समाज में हरिजन को सवर्ण के घर के अन्दर नहीं जाने देना, कुओं से पानी न भरने देना, दूकान पर अन्य नागरिकों की भांति चाय आदि न पीने देना आदि। इसे सामाजिक शोषण का एक रूप मान सकते हैं। इसी प्रकार यदि पूरे गांव में वर्षों से मजदूरी की एक दर स्थिर है और उत्पादन की और महंगाई की घट-बढ़ का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, गांव में किसी खास वर्ग को किसी परम्परा, धर्म, सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक दबाव के कारण विशेष व्यवहार का शिकार होना पड़ता है। ब्याज की ऊँची दर देनी होती है और ये बातें सामान्य-तया पूरे गांव पर या किसी वर्ग पर लागू होती है, तो हम इसे संस्थात्मक आर्थिक शोषण कहेंगे।

2. यदि समाज में ऐसा संगठन हो या ऐसी परम्परा हो जिसके कारण कोई खास व्यक्ति या वर्ग को अपने धन्धे को छोड़कर दूसरा काम करना पड़ जाय, तो यह भी शोषण का ही एक रूप है। कतिपय कारणों से जैसे सामाजिक, आर्थिक या शैक्षणिक कारणों से भंगी, नाई, धोबी, बढ़ई अपना धन्धा नहीं छोड़ पाता और इस कारण उसका आर्थिक विकास रुकता है, साथ ही उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा भी कम होती है, वह अपने को हीन समझता है और तथा कथित अन्य ऊँचे समाज का दबाव उसे सहना पड़ता है, तो यह भी शोषण का एक रूप है।

3. ग्राम समाज में कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते हैं, जो अपनी मर्जी से या अपने आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव से कुछ व्यक्तियों और वर्गों को अपने अधीन रखते हैं, यह व्यक्ति या व्यक्ति समूह द्वारा संगठनात्मक शोषण कहा जायेगा। गांव में ऐसे लोग भी मिलेंगे, जो गरीब और पिछड़े वर्ग के व्यक्तियों को अपनी जमीन पर बसा लेते हैं और इस कारण उन पर अनेक प्रकार के दबाव डालते रहते हैं। वे लोग उनसे अपने यहां मजदूरी कराते हैं, उन्हें कम मजदूरी देते हैं, उनसे बेगार लेते हैं, दूसरों के यहां काम करने से रोकते हैं, राजनीतिक दृष्टि से उनको अपने पक्ष में रखते हैं। इसी प्रकार ऐसे लोग भी मिलेंगे, जो एक बार कर्ज देकर व्यक्ति को वर्षों तक आर्थिक दृष्टि से अपने कब्जे में रखे रहते हैं। ऐसे लोग भी हैं जो सामाजिक या धार्मिक अवसरों पर आगे होकर ऋण देते हैं और उनसे ऊँची दर पर ब्याज वसूल करते हैं। साहूकारी के इस व्यवहार से भी शोषण की नीति जाहिर होती है।

पिछले दो दशकों से देश में राजनीतिक शोषण स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा है। लोकतन्त्र में चुनाव के जरिए तथा अन्य राजनीतिक संगठनों में विभिन्न तरीकों से कुछ खास वर्ग के लोगों को अपने पक्ष में किया जाता है। चुनाव के समय पैसे देना, सामाजिक दबाव डालना, डराना, धमकाना, मतदान से रोकना या अमुक प्रकार से मतदान कराना आदि को राजनीतिक शोषण कह सकते हैं।

4. कुछ शोषण प्रत्यक्ष रूप से सामने आता है, तो कुछ छिपा रहता है। इस प्रकार का शोषण इतना सूक्ष्म होता है कि शोषित व्यक्ति को उसकी अनुभूति भी नहीं होती। मजदूर किसान के खेत में सुबह से शाम तक 10 से 12 घण्टे काम करता है। उसे वहां स्वास्थ्य रक्षा की ओर विश्राम आदि की कोई सुविधा नहीं मिलती। उसे उच्च जाति की ओर धनिक वर्ग की ओर से अपमान तथा भेदभाव का व्यवहार सहना पड़ता है। वह सब वह सहज भाव से सहता रहता है। उसे इस प्रकार के अपमान व्यवहार से अपने शोषण की अनुभूति नहीं होती। इसे हम सूक्ष्म शोषण मान सकते हैं।

गांव में सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक शोषण को अलग-अलग करके नहीं देख सकते हैं। वास्तव में वह एक-दूसरे से जुड़ा रहता है। जिस प्रकार सामाजिक शोषण का आधार मुख्यतः जाति प्रथा है, उसी प्रकार आर्थिक शोषण का आधार गांव में जमीन का केन्द्रीकरण है। गांवों की सम्पूर्ण आर्थिक गतिविधियां जमीन के इर्द-गिर्द घूमती है। जमीन की और जाति की व्यवस्था समाज को विभिन्न सामाजिक और आर्थिक वर्गों में बांटती है। सवर्ण कही जाने वाली जातियों के पास ही जमीन केन्द्रित होने के कारण आदिवासी, हरिजन और अन्य पिछड़ी जातियां शोषण का शिकार होती हैं। यह स्थिति आमतौर पर सभी जगह देखी जा सकती है।

यहां जो परिस्थिति है, उसमें शोषण ने विरासत का रूप ले लिया है। ग्राम समाज के कुछ इने-गिने परिवार आदिवासियों और दूसरी पिछड़ी जाति के लोगों के शोषण के अभ्यासी बन गए हैं।

टवलाई क्षेत्र में शोषण की जो परिस्थिति है, उसे समझने के लिए हम शोषण के कुछ नमूने देखना चाहेंगे। सर्वेक्षण के दौरान शोषण के अनेक नमूने देखने और सुनने को मिले। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :—

सन् 1955 में, आश्रम की स्थापना के आरंभिक काल में, आश्रम वालों का एक आदिवासी युवक से सम्पर्क हुआ। इस युवक ने अपने विवाह के लिए गांव के एक राजपूत किसान से 100) रु. उधार लिए थे। उधारी की शर्त यह थी कि उस युवक को, उसकी पत्नि को और उनकी भावी सन्तान को जीवन-भर राजपूत किसान के घर मजदूरी करनी होगी। आश्रम वालों ने आदिवासी युवक को सुझाया कि वह 100) रु. जमा करके जीवन-भर की इस गुलामी से अपने को छुड़ा ले, पर जवाब में उसने कहा कि मैं तो जबान में हार चुका हूं। मेरी जरूरत के समय जिन्होंने मुझे मदद की, उनका मुझ पर पहला हक है। इस तरह अपनी संस्कारगत प्रमाणिकता के कारण वह युवक अपनी गुलामी से छूटने के लिए सहज में राजी नहीं हुआ।

इस उदाहरण से दो बातें सामने आती है। एक ओर तो आदिवासी अपने संस्कार के कारण राजपूत के भुलावे में आ जाता है और वचन पालन की तैयारी बताता है। दूसरी ओर राजपूत अपने बस भर शोषण करने से चूकता नहीं है। आश्रम के सामने इस प्रकार की समस्याएँ अक्सर आती हैं और आश्रम उन्हें सुलझाने का प्रयास करता है।

7 अगस्त, 1974 को श्री फूलचन्द पटेल के यहां एक आदिवासी आया। उसके नाम तकावी वसूली का नोटिस निकला था। उसे 700) रु. वापस करने थे।

अन्यथा उसकी सम्पत्ति कुर्क होने की स्थिति सामने थी। वह पास-पड़ोस के गांवों के महाजनों और किसानों से कर्ज पाने के लिए घूम रहा था। एक महाजन सात सौ रुपये देने के लिए तैयार हुआ। लेकिन महाजन की शर्त यह थी कि उसने 3 बीघे में जो मूंगफली बोयी है, उसकी पूरी फसल वह सात सौ रुपये के बदले में लेगा। अंदाज यह है कि उसमें करीब 3 000) रु. की मूंगफली पकेगी। सात सौ रुपये चुकाने के बदले में आदिवासी को अपनी तीन हजार रुपये की मूंगफली महाजन को देनी पड़ रही है ? गांव में ऐसी कोई एजेन्सी नहीं है, जो शोषण की इस परिस्थिति को रोक सके, इस स्थिति में शोषितों का कोई मदद कर सके। यह स्थिति उस समय अधिक विचारणीय हो जाता है जब सरकारी कर्ज चुकाने के लिए आदिवासी का इतना भारी शोषण होता है।

उक्त घटना से मिलती जुलती एक और घटना आश्रम के पास के मुरलोद की है। इस गांव का एक मोची साप्ताहिक बाजार के दिन जूते बेचकर वापस अपने घर पर जा रहा था। वह अपना सामान अपनी गद्दी पर ले गया था। लौटते समय वह राजपूतों की बस्ती वाले गांव की एक गली से गुजर रहा था। गली में एक राजपूत परिवार के मकान के सामने बैल गाड़ी खड़ी थी, जिस पर पानी से भरे घड़े रखे थे। गाड़ी पर पानी के दूसरे बरतन भी थे। मोची जब उस रास्ते से गुजर रहा था, तो उसकी गद्दी की पूंछ राजपूत की गाड़ी से छू गयी। इसके कारण सवर्णों ने मोची की पिटाई की। उससे हरजाना मांगा। इसकी प्रतिक्रिया हुई और गांव के सवर्णों पर मुकदमा चला। आश्रम ने इसमें रुचि ली। बाद में सवर्णों ने अपनी गलती स्वीकार की और मोची को हरजाने की रकम भी लौटाई।

11 अगस्त,1974 के दिन कुण्हेरा गांव के एक साहूकार के यहां एक आदिवासी महिला पहुँची उसने चांदी के दो बाजूबंद साहूकार को बंधक के रूप में रखने को दिये। साहूकार ने उस महिला को 25) रु. दिये। बंधक रखे जेवर के बदले में साहूकार ने महिला को किसी प्रकार का लिखित प्रमाण नहीं दिया। जेवर की पहिचान के लिए महिला का नाम-पता उस पर अवश्य लिख लिया। इस प्रकार बड़ी मात्रा में जेवर यहां के साहूकारों के पास आते हैं। इसके बदले में साहूकार आदिवासी को कुछ भी लिखित नहीं देता है। आदिवासी लोग या दूसरे जरूरतमन्द लोग महाजन के विश्वास पर सब कुछ छोड़ देते हैं जबकि साहूकार अपने देनदार को लिखित रूप में कुछ भी नहीं देता है। इस स्थिति में कई प्रकार लाभ की और शोषण की गुंजाइश रहती जैसे है:-(1) इन्कार कर जाना, (2) टैक्स से बचना (3) इस कार्य का अधिकार न होते हुए भी इसे करते रहना और कानून की पकड़ से बचना (4) अन्य प्रकार का शोषण करना।

पिछले कुछ दिनों से यहां के साहूकारों ने पैसे के लेने-देने का नया तरीका निकाला है। इस नये तरीके से साहूकारों को अधिक लाभ होता है और गरीबों का भरपूर शोषण चलता है। इस प्रकार का हिसाब बैठाया है कि अल्पकालीन ऋण से महाजन को अधिकतम लाभ हो। ऐसे लोगों की संख्या काफी होती है, जो छोटी रकम, जैसे दस-बीस रुपये, अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं के लिए कर्ज के रूप में चाहते हैं। कुछ साहूकार इस प्रकार कर्ज जिन शर्तों पर देते हैं, उसे अठवाडिया कर्ज कहा जाता है। इसमें कर्ज का साप्ताहिक हिसाब रहता है। इसमें 10) रु. कर्ज लेने पर एक हफ्ते का व्याज देना पड़ता है। हर आठवें दिन 10) रु. पर 1)25 रुपये व्याज के होते हैं। पहले सप्ताह का 1)25 व्याज रकम देते समय ही काट लेते हैं और इस हिसाब से कर्जदार को शुरू में 8)75 रुपये ही देते हैं। साहूकार महीने में पांच सप्ताह मानता है और इस तरह यदि कर्ज एक महिने तक रहा तो महिने के अन्त में 10) रु. का व्याज 6)25 रुपये हो जाता है। यह तो नकद हिसाब हुआ। यदि कर्ज लेने वाला समय पर कर्ज वापस नहीं कर सका, तो साहूकार कर्जदार के गांव अपना प्रतिनिधि वसूली के लिए भेजता है। इस स्थिति में वसूलिये को साईकिल का किराया और उसका खाना खर्च भी कर्जदार को देना पड़ता है। साहूकार जरूरत पड़ने पर झगड़ा झंझट करने की भी तैयारी रखता है।

इस प्रकार का कर्ज समाज में आर्थिक दृष्टि से अत्यन्तगिरी स्थिति का व्यक्ति ही लेता है। मौजूदा व्यवस्था के अन्तर्गत इस प्रकार का व्यक्ति मानसिक दृष्टि से अत्यन्त दीन और हीन स्थिति में रहता है। उसे हर प्रकार का दबाव और अत्याचार सहन करने की तैयारी रखनी पड़ती है। अठवाड़िया कर्ज का यह रिवाज इस क्षेत्र में हाल ही मे शुरु हुआ है। अतः इस प्रकार का लेन-देन अभी खुले रूप में नहीं होता है।

शोषण की इन परिस्थितियों से मुक्ति पाने के लिए जरूरी है कि (1) शोषित समाज में हिम्मत आये और शोषण तथा अत्याचार का मुकाबला करने की संगठन क्षमता भी आये। (2) जिन कारणों से शोषित होने के लिए मजबूर होना पड़ता है, उन कारणों को समाप्त किया जाय। इसके लिए आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों में परिवर्तन लाना भी जरूरी है। यहां यह स्वीकार करना चाहिये कि इस प्रकार का परिवर्तन मात्र आश्रम के बल पर सम्भव नहीं। इसके लिए सरकार की ओर से प्रयास के साथ ही समाज की संरचना में भी परिवर्तन जरूरी है। (3) शोषक वर्ग के व्यवहार में परिवर्तन भी जरूरी है। उसके सोचने के ढंग में, समाज के प्रति उसके कर्त्तव्य की भावना में परिवर्तन के साथ उसमें उचित लाभ कमाने की मनोवृत्ति जगाना भी जरूरी है। व्यापक और गहन लोकशिक्षण द्वारा शोषक वर्ग की मनोवृत्ति बदलना जरूरी है।

शोषण की इस परिस्थिति का मुकाबला करने की दृष्टि से आश्रम की ओर से समय-समय पर जो कार्यक्रम हाथ में लिए जाते रहे हैं, उनमें से कुछ ये हैं—

1. शोषण की घटनाओं को हाथ में लेकर समस्या को सुलझाना और सम्बन्धित लोगों में शोषण समाप्त करने की भावना विकसित करना।

2. आश्रम में तथा क्षेत्र में विचार-शिक्षण की दृष्टि से शिविरों और सम्मेलनों का आयोजन करना।

3. सरकार द्वारा बने कानूनों के तहत शोषण कम करने में मददगार होना। जैसे, ऋण-निवारण-योजना को अमली रूप देने में सहायक होना।

4. समय-समय पर पदयात्राओं का आयोजन करना।

5. बुनियादी तालीम के माध्यम से नई पीढ़ी को इस प्रकार का शिक्षण देना जिससे उसमें शोषण की वृत्ति समाप्त हो। विद्यालय से निकले युवकों में शोषण की भावना समाप्त की जाये और उन्हें इस प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाये जिससे वे समाज में शोषण समाप्त करने में मददगार बन सकें।

5

शिक्षण-विचार

ग्रामभारती की स्थापना के मूल में ही शिक्षण का उद्देश्य समाहित है। आश्रम के संचालकों के मन में शिक्षा के माध्यम से नयी समाज-रचना का विचार आरंभ से ही था। आश्रम की स्थापना के मूल में विचार यह था कि यहां पूर्व बुनियादी से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक की नयीतालीम का एक समग्र केन्द्र विकसित हो। किन्तु बाद में केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि के तत्कालीन मंत्री श्री बोत्रे जी के सुझाव पर क्षेत्र में घूमते, क्षेत्र की समस्याओं को समझने, उनका अध्ययन करने, उनके हल खोजने और रचनात्मक कामों के लिए क्षेत्र का लोक मानस तैयार करने के कार्य को प्राथमिकता दी गयी।

आश्रम की प्रवृत्तियों को गहराई से देखने पर यह साफ तौर पर दिखाई देता है कि यहां की सभी प्रवृत्तियों के साथ शिक्षण की दृष्टि जुड़ी हुई है। हर काम के साथ शिक्षण की दृष्टि को जोड़ने का प्रयास सराहनीय कहा जा सकता है। आश्रम की ओर से चलने वाले शिविर, सम्मेलन, पदयात्रा, रात्रिशाला, कार्यकर्ता-प्रशिक्षण आदि के कार्यक्रम तो शिक्षा के कार्यक्रम के साथ सीधे जुड़े ही रहे। इसके अतिरिक्त आर्थिक विकास के कार्यक्रमों के माध्यम से भी गांव के लोगों का शिक्षण होता रहा। इस प्रकार यहां शिक्षण का संबंध मात्र विद्यालय की चार दीवारों के अंदर की शिक्षा से नहीं रहा। बल्कि यहां तो शिक्षण को ग्रामाभिप्रमुख करने का नम्र प्रयास किया गया। आश्रम में शिक्षण की जो दृष्टि रही, उसे गांधीजी के शब्दों में व्यक्त करना अधिक उपयोगी होगा। 1937 में गांधीजी ने कहा था : सच्ची शिक्षा वही है, जिसे पाकर मनुष्य शरीर, मन और आत्मा के गुणों का सर्वांगीण विकास कर सके और

उन्हें प्रकाश में ला सके। साक्षरता न तो शिक्षा का ध्येय है और न उससे शिक्षा का आरंभ ही होता है। वह तो स्त्री-पुरुषों को शिक्षित बनाने के अनेक साधनों में से एक साधन-मात्र है। इसलिये मैं तो बच्चे की शिक्षा का प्रारम्भ उसे कोई उपयोगी दस्तकारी सिखाकर-अर्थात् जिस क्षण से उसकी शिक्षा शुरू होती है, उसी क्षण से उसे कुछ-न-कुछ नया सृजन करना सिख कर करूंगा। इसके लिए आवश्यक है कि बालकों को जो उद्योग-धन्धे यंत्रवत् सिखाये जाते हैं, वे उन्हें वैज्ञानिक ढंग से सिखाये जायें।[1] इस प्रकार यहां शिक्षा में काम के माध्यम से शिक्षण देने की पद्धति अपनायी गई। इसे समवाय शिक्षण-पद्धति कहा गया। ग्रामभारती आश्रम में इसी समवाय पद्धति को शिक्षण का माध्यम बनाने का प्रयत्न रहा। आश्रम में चली शिक्षण की प्रवृत्तियों को देखते हुए उन्हें दो वर्गों में विभाजित करना उपयोगी होगा—

1. लोक शिक्षण के नाम से चलने वाली शिक्षण की प्रवृत्तियां

2. बुनियादी या नयीतालीम के नाम से चलने वाली प्रवृत्तियां

लोकशिक्षण के नाम से चलने वाली प्रवृत्तियों की चर्चा आगे करेंगे। यहां नयी तालिम के नाम से चलने वाली प्रवृत्तियों पर विचार करना चाहेंगे।

जिस समय टवलाई गांव में ग्रामभारती आश्रम की स्थापना हुई, उस समय यहां एक सरकारी प्राथमिक विद्यालय था। आश्रम की ओर से क्षेत्र में शिक्षा को नयी दिशा देने की दृष्टि से दो प्रकार के कदम उठाये गये :—

1. आश्रम में स्वतंत्र रूप से शिक्षण की प्रवृत्तियां शुरू की गई। इसमें बालवाड़ी, लोकशाला और कुमार-मंदिर का समावेश होता है।

2. पास पड़ोस में अनेक प्राथमिक विद्यालय मध्य भारत सरकार की ओर से चल रहे थे। इन सरकारी विद्यालयों में बुनियादी शिक्षण पद्धति का प्रवेश हो, इस उद्देश्य से पास-पड़ोस के नौ सरकारी विद्यालयों में, शिक्षा विभाग की अनुकूलता और अनुमति से एक प्रयोग शुरू किया गया। इन विद्यालयों का मार्ग दर्शन आश्रम ने अपने हाथ में लिया।

शुरू में सरकारी विद्यालयों के मार्गदर्शन की जिम्मेदारी इसलिए ली गयी थी कि आश्रम के सम्पर्क और मार्ग दर्शन से ये विद्यालय भी नयी तालीम की

---

[1] गांधी जी, हरिजन, 31 जुलाई, 1937

दिशा में आगे बढ़ सकेंगे। किन्तु कार्यकर्ताओं का अनुभव यह रहा कि मौजूदा सरकारी तंत्र का, सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों का और बालकों के पालकों का जो मानस है, उसके कारण इस प्रयोग को सफलतापूर्वक चलाना सम्भव नहीं हुआ। पर्याप्त अधिकार के अभाव के कारण भी सरकारी विद्यालयों को अपेक्षित दिशा नहीं दी जा सकी। प्रत्यक्ष अनुभव के बाद आश्रम के लोगों की यह धारणा बनी कि सरकारी विद्यालयों में काम करने वाले शिक्षकों का अपना जो मानस होता है, उनकी कार्य-पद्धति, पाठ्यक्रम तथा उन पर नियंत्रण आदि की जो स्थिति रहती है, उसमें नयी तालीम के समुचित प्रयोग की अनुकूलता रह नहीं पाती।

ग्रामभारती आश्रम की स्थापना के साथ ही यहां लोकशाला की एक योजना आरम्भ हुई थी। लोकशाला के आरम्भ के पीछे भावना यह थी कि क्षेत्र के कुछ अशिक्षित या अल्प शिक्षित युवकों को 2–3 वर्षों के लिये आश्रम में रखकर उन्हें आश्रम-जीवन के साथ विविध रचनात्मक कार्यों की दृष्टि से प्रशिक्षण दिया जाय और बाद में वे अपने क्षेत्रों में जाकर खेती के साथ क्षेत्रीय कार्यकर्ता के रूप में भी आंशिक काम कर सकें। इस योजना के अन्तर्गत कुछ किशोर और युवक भरती हुए। कुछ महीनों तक उन्होंने प्रशिक्षण भी प्राप्त किया। बाद में गांधी स्मारक निधि की निति में परिवर्तन के कारण यह कार्यक्रम बन्द हो गया। आगे कुमार मन्दिर के नाम से बुनियादी शाला का प्रारम्भ किया गया। पर इस उद्योग प्रधान विद्यालय को भी एक वर्ष के अन्दर बन्द करना पड़ा।

26 जनवरी, 1959 को यहां कुमारमन्दिर का शुभारम्भ विधिवत् हुआ। जैसा कि ऊपर कहा गया है, टवलाई गांव में एक सरकारी प्राथमिक विद्यालय चल रहा था। आश्रम ने गांव के लोगों की सहमति प्राप्त करके शासन से टवलाई गांव की सरकारी शाला अपने हाथ में लेने की कार्यवाही की और अक्टूबर, 1959 में उनका विधिवत् हस्तान्तरण हुआ। शासकीय शाला के हाथ में आते ही प्राथमिक विद्यालय को माध्यमिक स्तर तक ले जाने की सामान्य नीति रखी गई और सन् 1964 से आठवी कक्षा तक की नियमित पढ़ाई चलने लगी, इस समय आश्रम के कुमार-मंदिर को शासन की स्थायी मान्यता प्राप्त है और सरकारी पाठ्यक्रम को स्वीकार करते हुए विद्यालय में नयी तालीम की दृष्टि और कार्य-पद्धति को ध्यान में रखकर पढ़ाई की व्यवस्था का प्रयास रहता है।

आरम्भ में ही विद्यालय के सामने सरकारी मान्यता का और शिक्षा के माध्यम का सवाल आया। वैसे, स्वतंत्र प्रयोग वाले इस विद्यालय को सरकारी मान्यता प्राप्त करने में कोई खास कठिनाई नहीं थी। लेकिन यह मान्यता उस समय

कठिन हो गयी जब विद्यालय ने मातृभाषा और राष्ट्रभाषा के महत्त्व को प्राथमिकता दी। विद्यालय ने अपनी यह नीति निश्चित की कि वह आठवीं कक्षा तक विषय के रूप में भी अंग्रेजी नहीं पढ़ाएगा। अंग्रेजी न पढ़ाने के इस निर्णय के कारण मान्यता प्राप्ति में काफी कठिनाई हुई। उसका असर विद्यालय में छात्रों की संख्या पर भी पड़ा। अंग्रेजी न पढ़ाने के कारण विद्यार्थियों का शैक्षणिक स्तर काफी ऊंचा ऊंठा। देखा गया कि आठवीं तक मातृभाषा अथवा राष्ट्रभाषा में शिक्षा देने पर भाषा-संबंधी ज्ञान की जड़ मजबूत हो जाने के कारण बाद में विद्यार्थी अंग्रेजी भी आसानी से सीख लेते है। अंग्रेजी की अनिवार्यता से मुक्ति पाने के लिए आश्रम को अपना प्रश्न भारत-शासन के शिक्षा मंत्रालय तक ले जाना पड़ा। जब वहां से बिना अंग्रेजी के भी आठवीं तक की पढ़ाई की मान्यता देने का आदेश मिला, तभी कुमार मंदिर को प्रान्तीय शिक्षा विभाग ने विधिवत् मान्यता दी।

विद्यार्थी को स्वावलम्बन की शिक्षा मिले और बुद्धि के साथ श्रम का मेल बैंठे इस दिशा में प्रयोग करना नयी तालीम का एक प्रमुख अंग है। कुमार-मंदिर में वस्त्रोद्योग और कृषि, इन दोनों पर विशेष ध्यान दिया गया है। कपास की खेती से लेकर सूत उत्पादन तक की सारी प्रक्रियाएं कुमार-मंदिर के विद्यार्थियों को सिखाने का प्रयत्न होता रहा है। दो-तीन वर्षों के प्रयत्नों के बाद स्थिति यह बनी कि आश्रम के छात्रावास में रहने वाले विद्यार्थी अपने कपड़ों के लिए आवश्यक सूत स्वयं कातने लगे। यह उल्लेख करना उचित होगा कि छात्रावास के विद्यार्थियों को वस्त्र-स्वावलम्बन की दिशा में बढ़ने के अवसर बराबर मिले हैं। क्योंकि (1) वे दोनों समय की प्रार्थना में और सामूहिक सूत्र-यज्ञ में कताई करते रहते हैं (2) आश्रम की अपनी दिन चर्या है एवं वे खाली समय में भी वे कताई कर लेते हैं।

इस प्रकार वस्त्र स्वावलम्बन, कुमार-मंदिर के छात्रावास की एक प्रमुख सफलता है। छात्रावास में रहने वाले विद्यार्थियों के पास पहनने के जो भी वस्त्र दिखाई पड़ते हैं, वे उनके स्वयं के काते हुए सूत के होते है।

कृषि यहां का दूसरा उद्योग है। वैसे आश्रम की खेती पूर्णतः विद्यालय पर निर्भर नहीं है। फिर भी खेती में विद्यार्थियों का योगदान महत्व का है। खेती समवाय शिक्षण का माध्यम है। कृषि कार्य से ज्ञानार्जन भी होता रहे, इस बात का प्रयास किया जाता है। कपास यहां की जमीन के लिए अनुकूल एवं लाभप्रद फसल है। खेत तैयार करना, पंक्ति बनाना, निदाई-गुड़ाई करना आदि सब क्रियाएं विद्यार्थी करते हैं और इन कार्यों के साथ उन्हें सम्बन्धित ज्ञान भी दिया जाता है। यहां यह स्वीकार करना चाहिये कि कृषि-कार्य में विद्यार्थियों का सहयोग जिस रूप में प्रारंभिक वर्षों में था उस रूप में आज नहीं है। कुछ व्यावहारिक कारणों से कृषि कार्य

में विद्यार्थियों का योगदान कम होता गया। कृषि सम्बन्धी जो आंकड़े प्राप्त हैं, उनसे भी यह साफ तौर से झलकता है कि आगे चलकर इस दिशा मे प्रयत्न उत्साहवर्धक नहीं रहे और खेती मजदूरों पर अधिक निर्भर होती गयी। कुमार–मंदिर की खेती से जो प्राप्ति हुई उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

सारणी संख्या–6

कृषि कार्य की आय परिणाम (रुपयों में)

वर्ष	विवरण		आय
1960	कपास, मूंगफली, सब्जी	–	487)62
1965	सब्जी	–	51)20
1970	सब्जी, फल, मूंगफली, कपास	–	895)00
1971	सब्जी, फल, मूंगफली, कपास	–	353)70

श्रम आश्रम जीवन का अनिवार्य अंग है। नित्य के कार्यक्रम के साथ अनिवार्य रूप से जुड़े इस कार्यक्रम को समवाय शिक्षण के माध्यम के रूप में अपनाया गया है। आरम्भ से ही विद्यालय में प्रतिदिन एक घण्टा शरीर श्रम का कार्यक्रम रहा है। श्रम के इस घण्टे में अनेक प्रकार के निर्माण कार्य किये जाते रहे हैं, जैसे–विद्यालय एवं आश्रम की खेती में मदद, भवन निर्माण, सड़क-निर्माण, कुआं खुदाई, बांध-निर्माण आदि। विद्यालय के विद्यार्थी जो श्रम करते हैं, उसका विधिवत हिसाब रखा जाता है विभिन्न वर्षों में किये गये श्रम का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

सारणी संख्या–7

विद्यालय के श्रम का मूल्य (रुपयों में)

वर्ष		विद्यार्थियों के श्रम का मूल्य
1959	—	509)10
1960	—	1,191)00
1965	—	1 382)45
1967	—	1,785)90
1970	—	2,378)25
1971	—	1,925)95

ऊपर जो आंकड़े दिये गये हैं वे मात्रा में कम होते हुए भी उत्साह वर्द्धक हैं। यहां महत्व मात्रा का नहीं है, बल्कि महत्त्व इस बात का है कि श्रम के साथ-साथ विद्यार्थियों का शिक्षण भी होता रहता है। सीखने के साथ श्रम जुड़ कर समवाय सधता है। कुमार-मन्दिर लोकशाला तथा छात्रावास के बड़े छोटे बच्चों ने मिलकर अनेक निर्माण कार्यों में मदद पहुंचाई है। उन्होंने जिन कार्यों में मदद की है, उनमें मुख्य है—शिक्षक-निवास का निर्माण, सावन मां के झोपड़े का निर्माण और चम्पा मां के घर का निर्माण। इन कार्यों के साथ बच्चों में सामाजिकता का विकास हुआ है और इन कार्यों की प्राथमिक जानकारी भी मिली है। विद्यालय और छात्रावास के बालक और शिक्षक समय-समय पर क्षेत्र के बाढ़ पीड़ितो और आग पीड़ितों की सेवा सहायता के लिए जाते रहे हैं। उनके इन कार्यों की गहरी छाप जनता के दिलों पर पड़ी है।

लोक शिक्षण और संस्कार-निर्माण यहां की मुख्य प्रवृत्तियां रही है। आदिवासियों में एवं पिछड़ी जातियों में संस्कार निर्माण आवश्यक और अनिवार्य काम है। उनमें शिक्षा के प्रति जो अरुचि देखने में आती है, तथा सफाई,स्वास्थ्य और संस्कारों का जो व्यापक अभाव दीखता है, उसे दूर किये बिना उनका आगे बढ़ना संभव नहीं है। छूआछूत मिटाने और जातिगत भेदभाव को दूर करने जैसे कार्यक्रम भी संस्कार निर्माण और लोकशिक्षण के साथ जुड़ जाते हैं। जो विद्यार्थी आश्रम एवं विद्यालय से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े रहते हैं, उनमें संस्कार निर्माण होते रहे. इस दृष्टि से आश्रम में अनेक प्रकार के कार्यक्रम चलते रहते हैं। छात्रावास और विद्यालय में एक साथ रहने और एक साथ काम करने के अलावा सामूहिक भोजन, सामूहिक प्रार्थना, सामूहिक सफाई, सामूहिक श्रमदान आदि आश्रम की नित्य की दिनचर्या के अंग ही बन गये हैं। नाटक, भजन-कीर्तन, गोष्ठियां, सत्संग, शिविर,सभा आदि ऐसे कार्यक्रम हैं, जिनसे बच्चों और बड़ों का शिक्षण होता रहता है। लोक सम्पर्क और लोक शिक्षण की दृष्टि से हरसाल सर्वोदय पखवाड़े में 30 जनवरी से 12 फरवरी तक क्षेत्र के गांवों में पदयात्राएं आयोजित की जाती हैं। इन पदयात्राओं के माध्यम से गांवों के लोगों का व्यापक लोक शिक्षण होता है। ग्रामीण जीवन में आपस के भेद भाव दूर करने और साम्ययोगी जीवन जीने की प्रेरणा देने के प्रयास इस प्रकार की पदयात्राओं द्वारा किये जाते हैं।

ग्राम भारती में आज नयी तालीम के नाम से जो प्रवृत्तियां चलती है, उनका संक्षिप्त विवरण हमने ऊपर देखा। जैसा कि ऊपर के विवरण से स्पष्ट है, कुमार-मंदिर यहां का मुख्य विद्यालय है। इसके अतिरिक्त बालवाड़ी का क्रम कभी टूटा नहीं। बालवाड़ी में पास-पड़ोस के पुरों के छोटे बच्चे आते हैं जिनकी संख्या 25 से 40 के

आस-पास रहती है। आदिवासी बच्चों में शिक्षा की भूख जगाने और उन्हें संस्कारी वातावरण देने में बालवाड़ी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। नयी तालीम का बीज बाल-वाड़ी में पड़ता है, जो कुमार-मंदिर में आकर उगता है।

कुमार-मंदिर में 1973 तक पहली से आठवीं तक की पढ़ाई होती रही। इधर कुछ समय से इस बात की आवश्यकता महसूस की जाती रही कि कुमार-मंदिर को उच्चतर माध्यमिक स्तर तक बढ़ाया जाय। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखकर 1974 से नवीं कक्षा की पढ़ाई शुरू की गयी है। इस प्रकार बालवाड़ी से उच्चतर माध्यमिक स्तर तक बुनियादी विद्यालय का एक प्रयोग यहां किया जा रहा है। यह प्रयोग अनेक सीमाओं से सीमित होते हुए भी अपना महत्व रखता है। सरकारी पाठ्य क्रम, प्रशिक्षित एवं निष्ठावान शिक्षकों का अभाव, समाज का विपरीत वातावरण सरकार का दृष्टिकोण और अनुदान नीति आदि इसकी अनेक सीमाऐं हैं। हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि उक्त सीमाओं के कारण इसे नई तालिम का परिपूर्ण विद्या-लय कहना ठीक नहीं होगा। हां, यहां परिस्थिति से समझौता करते हुए नयी तालीम की ओर बढ़ने का प्रयास अवश्य किया जा रहा है।

6

रचनात्मक प्रवृत्तियाँ

क्षेत्र में किए गए कार्यों को हम मुख्यतया दो भागों में बांट सकते हैं :—

1. आर्थिक विकास की दृष्टि से चलाये गए कार्यक्रम,

2. समाज-कल्याण, सेवा एवं सम्पर्क की दृष्टि से किये गये कार्य,

आर्थिक विकास की दृष्टि से जो भी कार्यक्रम यहां चले, उनका लाभ आस-पड़ोस के गांवों के लोगों को मिला। इनसे प्राप्त लाभों पर विचार करने पर जो तथ्य सामने आते हैं, उन्हें इस रूप में गिना सकते हैं।

क–क्षेत्र के लोगों को रोजगार मिला। विविध प्रकार के कार्यों के विस्तार के कारण कुशल तथा अकुशल श्रमिकों को उनके घरों में या गांव क्षेत्र में रोजगार का अवसर मिला।

ख–नये-नये धन्धों को सीखने का अवसर भी मिला। जैसे अच्छी खेती, गुड़ बनाना, कताई-बुनाई, आदि धन्धों का प्रशिक्षण मिला।

ग–पिछड़े समुदाय और आदिवासी समाज के आर्थिक जीवन को एक नयी दिशा मिली। आज तक ये लोग मात्र पारम्परिक खेती पर ही निर्भर रहते थे। अब इन्हें नये कार्यों को अपनाने की प्रेरणा, सुविधा और प्रशिक्षण मिला।

घ–एक बड़ा लाभ यह हुआ कि इनमें स्वयं कुछ करने की हिम्मत आयी। अब ये लोग सरकारी योजनाओं के अन्तर्गत शुरू होने वाले कार्य हाथ में लेने की स्थिति में आये हैं।

इस प्रकार आश्रम द्वारा या उससे प्रेरित आर्थिक कार्यक्रमों से इनको जो भौतिक लाभ मिला, उसका अपना महत्व है पर यहां जो भी कार्यक्रम चले, उनकी अपनी एक सीमा रही। यदि इन कार्यों का फलश्रुति को भौतिक दृष्टि से देखें तो शायद आशाजनक सफलता नहीं दीखेगी, परन्तु इन कार्यक्रमों के माध्यम से क्षेत्र के लोगों को जो प्रशिक्षण और अनुभव मिला, उसका अपना एक महत्व है। इन अनुभवों के आधार पर आगे के कार्यक्रम बनाये जा सकते है।

आर्थिक विकास की दृष्टि से चलाये जाने वाले कार्यक्रमों को संक्षेप में इस रूप में गिना सकते हैं—

1. सघन क्षेत्र योजना —1957 से टवलाई में खादी ग्रामोद्योग आयोग की ओर से सघन विकास योजना आरम्भ की गई है। अपेक्षा यह रखी गयी थी कि इस योजना के माध्यम से खादी ग्रामोद्योग आयोग के द्वारा चलाये जाने वाले ग्रामीण उद्योगों से क्षेत्र के गांवों में उद्योग धन्धों को गति मिलेगी। इस क्षेत्र में आयोग की ओर से अनेक ग्रामीण उद्योगों को चलाने का प्रयास किया गया। इस काम में मदद दो ऐजेंसियों से प्राप्त हुई, जो आयोग की सीमा में आती हैं (1) खादी ग्रामोद्योग आयोग से सीधे प्राप्त आर्थिक साधन और (2) प्रान्तीय स्तर पर बने खादी ग्रामोद्योग बोर्ड से प्राप्त आर्थिक साधन और (3) राज्य सरकार की योजनाओं के अन्तर्गत भी मदद मिली।

इस क्षेत्र में जिन ऐजेंसियों को औद्योगिक विकास के लिए मदद मिली, उनमें मुख्य हैं (क) सघन विकास की क्षेत्र समिति (ख) आदिवासी बहुकार्यकारणी समिति (ग) ग्राम विकास मंडल और (घ) ग्रामभारती आश्रम, टवलाई। यहां यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि ये सभी संस्थाएं ग्राम भारती आश्रम टवलाई की प्रेरणा से ही बनी हैं।

आरम्भिक कार्य के लिए नवम्बर, 1957 में आदिवासी बहुकार्यकारिणी सहकारी समिति को 4,500) रु. की मदद मिली। 1959 में सघन क्षेत्र ने विधिवत कार्य करना आरम्भ किया। इसी वर्ष खादी ग्रामोद्योग-आयोग की ओर से सघन क्षेत्र समिति को विभिन्न उद्योगों के लिए 41,000) रु. का कर्ज तथा 46125 रु. का अनुदान मिला।

खादी ग्रामोद्योग के विकास की दृष्टि से निम्नलिखित उद्योगों को विकसित करने का प्रयास किया गया :—

क–खादी उद्योग–इस क्षेत्र में खादी की कोई परम्परा रही नहीं। खादी का

सारा काम यहां नए सिरे से खड़ा किया गया। प्रारम्भ में आश्रम में स्वावलम्बी खादी के कार्य का श्री गणेश हुआ। यह एक शुभ प्रयास था जिसकी परम्परा आज भी चालू है। यहां के छात्रावास के विद्यार्थी आज भी वस्त्र की दृष्टि से स्वावलम्बी हैं। सघन विकास समिति की ओर से व्यापारिक खादी का विस्तार करने का प्रयास किया गया। कत्तिनों को प्रशिक्षत किया गया और करीब 50 कत्तिनें नियमित रूप से इस काम में लगी। विभिन्न वर्षों से खादी के उत्पादन की स्थिति यों रही :—

सारणी संख्या–8

खादी उद्योग पर एक दृष्टि (रुपयों में)

वर्ष	स्वावलम्बी खादी	व्यापारिक खादी	खादी बिक्री
1959–60	897)-	820)-	4,436)-
1960–61	1,294)-	661)-	5,314)-
1961–62	1,233)-	1,604)-	6,111)-
1962–63	1,250)-	6,946)-	10,136)-
1963–64	1,000)-	4 006)-	9,809)-
1970–71	2,940)-	1,470)-	48 318)–1
1971–72	3,462)-	3,272)–1	52,097)–1
1972–73	—	10,134)–1	41,165)–1
1973–74	—	9,697)–1	41,776)–1

क्षेत्र के लोगों ने खादी उद्योग को सीमित मात्रा में स्वीकार किया। पीछे से स्थितियां बनी : (1) खादी पहनने वालों की संख्या मे वृद्धि हुई। (2) कत्तिनो, बुनकरों और दूसरे जरूरत मंद लोगों को रोजगार मिला। (3) एक नये उद्योग की जानकारी मिली।

स–गुड़ उद्योग—क्षेत्र में गन्ने का उत्पादन होता रहा है। पर क्षेत्र की जनता को गुड़ बनाने की शास्त्रीय विधि का ज्ञान न होने से गुड़-उद्योग का विकास रुका पड़ा था। गांव के लोग गन्ने को या तो हाट बाजार में बेच देते थे या घटिया किस्म का गुड़ बना लिया करते थे। प्रारम्भ में शासन के कृषि विभाग द्वारा गुड़ बनाने की एक भट्ठी यहां लगायी गयी। परन्तु कई कारणों से, खासकर ईंधन की कमी के कारण, यह नहीं चल सकी। बाद में आश्रम की प्रेरणा से यहां के दो व्यक्तियों ने गुड़-उद्योग

सारी बनाने का प्रशिक्षण लिया। इसके बाद सुधरे हुए ढंग से गुड़ बनाने के लिए टश-लाई क्षेत्र में सघन विकास समिति के चार केन्द्र, आदिवासी बहुकार्यकारिणी समिति का एक केन्द्र और व्यक्तिगत स्तर पर पांच केन्द्र इस काम के लिए चलने लगे।

सुधरे हुए रूप में क्षेत्र में गुड़-उद्योग का अच्छा स्वागत हुआ। इस क्षेत्र को आर्थिक लाभ तो हुआ ही साथ में जनता को अच्छा पोषण भी मिला। लोग गन्ने के उत्पादन में अधिक रुचि लेने लगे। व्यापारिक गुड़ के उत्पादन की स्थिति दिनों दिन अच्छी होती जा रही है। अब किसान गुड़ की व्यक्तिगत भट्टियां लगाने में रुचि लेने लगे हैं।

ग—चर्म उद्योग—धरमपुरी में चमड़े का काम करने वालों के 35 परिवार हैं। आश्रम क्षेत्र में करीब 176 व्यक्ति चमड़े के परम्परागत कार्य को जानते और करते थे। इस उद्योग को आगे बढ़ाने के लिए मध्यप्रदेश खादी ग्रामोद्योग बोर्ड के सहयोग से धरम पुरी में एक चर्मोद्योग सहकारी समिति का गठन किया गया।

चर्मोद्योग-सहकारी समिति का काम जिस उत्साह से शुरू हुआ, आगे चलकर धीरे-धीरे कम होता गया और अन्त में उसका सारा काम बन्द हो गया। जब तक सहकारी समिति को बाहर का संरक्षण रहा तब तक काम चला। जैसे-जैसे संरक्षण कम होता गया, काम भी मंदा पड़ता गया। स्थानीय लोग इस सहकारी समिति को चलाने में सक्षम नहीं हो सके।

घ—तेल उद्योग—यह क्षेत्र मूंगफली के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध रहा है। बड़े पैमाने पर मूंगफली का उत्पादन होने पर भी यहां उसके व्यापार की और उसका तेल निकालने की कोई व्यवस्था नहीं थी। सारा माल व्यापारियों के द्वारा दूसरे क्षेत्रों में खासकर इन्दौर, पहुंचा दिया जाता था और आज भी प्रायः यही स्थिति है। स्थानीय स्तर पर छुट-फुट रूप से कुछ तेली अपनी घानी से तेल निकालते थे। मूंगफली के व्यापार में शोषण की बहुत गुंजाइश है। इसी कारण आज भी व्यापारी वर्ग इस काम में सतत प्रयत्नशील रहता है।

आश्रम ने तेलघानी की दृष्टि से दो प्रकार के कदम उठाने के प्रयास किये। एक, तेल में स्वावलम्बन की दृष्टि से तेलघानी का कार्यक्रम। इसमें खाने के लिये तेल स्थानीय स्तर पर निकालने की व्यवस्था बनी। दो, स्थानीय कच्चे माल का पक्का माल गांव में बने, इस दृष्टि से व्यापारिक तेलघानी की योजना।

लोगों को खाने का ताजा तेल मिल सके, इस दृष्टि से आदर्श तेलघानी-केन्द्र

की स्थापना 1957 में की गयी। इस काम के लिए मध्यप्रदेश खादी-ग्रामोद्योग बोर्ड की ओर से 6 000) रु. भवन-निर्माण के लिए और 5,000) रु. चालू पूंजी के रूप में आदर्श तेलघानी केन्द्र को मिले। शुरू में यह कार्य ग्राम भारती आश्रम चलाता था। लेकिन बाद में इसे आदिवासी बहुकार्यकारिणी समिति को सौंप दिया गया। इस कार्यक्रम का क्षेत्र में ठीक स्वागत हुआ।

च–दाल-प्रशोधन—इस क्षेत्र में दाल का भी अच्छा उत्पादन होता है। खादी ग्रामोद्योग आयोग की योजना के अन्तर्गत स्थानीय स्तर पर दाल उत्पादन का कार्य शुरू किया गया। आरम्भ में इस कार्य में क्षेत्र के कुछ लोगों को रोजगार मिला। लेकिन स्थानीय लोगों ने इस उद्योग को सहजभाव से अपनाया नहीं, इसलिए कुछ समय के बाद यह बन्द हो गया।

छ–लुहारी और बढईगीरी : स्थानीय लुहारों और बढ़इयों को प्रोत्साहन देने और लोहे-लकड़ी उद्योग को स्थानीय स्तर पर विकसित करने की योजना भी यहां चली। यह कार्यक्रम भी खादी ग्रामोद्योग के सहयोग से सघन विकास की क्षेत्र समिति की ओर से चलाया गया। इस काम के लिए एक छोटा वर्कशाप भी खड़ा किया गया। इस वर्कशाप द्वारा स्थानीय उद्योग के सामान के उत्पादन और बिक्री का कार्य शुरू हुआ।

ज–ईंट उद्योग—खादी ग्रामोद्योग आयोग की आर्थिक मदद से क्षेत्र समिति ने यहां ईंट भट्टे की एक इकाई शुरू की। क्षेत्र के कुम्हारों और अन्य लोगों को इसका प्रशिक्षण दिया गया। इससे क्षेत्र के गरीब तबके को रोजगार मिला। यहां के कुम्हार सस्ते भाव में ईंट बेच देते थे, अब उन्हें अच्छा भाव मिलने लगा।

झ–इस क्षेत्र में महुए के पेड़ पर्याप्त संख्या में हैं। इनसे अखाद्य तेल का उत्पादन पर्याप्त मात्रा में किया जा सकता है। इसी उद्देश्य से खादी ग्रामोद्योग आयोग की योजना के अनुसार क्षेत्र समिति ने अखाद्य तेल एवं साबुन उद्योग को आगे बढ़ाने का निर्णय लिया।

इस उद्योग के साथ खास बात यह जुड़ी है कि इस काम को यहां शिक्षण के साथ जोड़ा गया। प्रारंभ में कुमार–मन्दिर के साथ पास के बाकानेर गांव की पाठशाला में भी साबुन–उद्योग शुरू किया गया। लेकिन बाद में यह कार्य कुमार-मंदिर तक ही सीमित रहा।

त-नीरा :-आदिवासी-क्षेत्र होने के कारण गांव में खजूर के पेड़ पर्याप्त संख्या

में थे। नीरा-उद्योग शुरू करने की अनुकूलता यहां पहले से ही थी। सन् 1955-57 में यहां मध्यप्रदेश-खादी बोर्ड की ओर से ताड़-गुड़ प्रशिक्षण केन्द्र खोला गया था। बाद में प्रशिक्षण-केन्द्र तो बन्द हो गया, पर नीरा के उत्पादन का क्रम लम्बे समय तक चलता रहा।

टवलाई-क्षेत्र में शुरू किये गये विभिन्न उद्योगों की जो स्थिति रही, उसका संक्षिप्त विवरण ऊपर दिया गया है। जिस प्रकार के उद्योगों को यहां शुरू किया गया, उनसे इस क्षेत्र के लोग प्रायः अनभिज्ञ थे। इस कारण विविध उद्योगों को चलाने में प्रशिक्षण की कठिनाई प्रमुख रही। इन उद्योगों के लिए लोगों में रुचि पैदा करने की भी कठिनाई रही। ऊपर के विवरण से इतना तो साफ जाहिर है कि यहां जो भी उद्योग शुरू किये गये, इनमें गरीब तबके के लोगों को ही मुख्य रूप से रोजगार मिला। आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग के लोगों को इन कार्यों में रोजगार मिलता रहा। यहां के ग्रामीण उद्योगों के बारे में एक बात यह भी सामने आती है कि प्रायः सभी उद्योग खादी ग्रामोद्योग आयोग द्वारा और खादी ग्रामोद्योग के राज्य स्तरीय बोर्ड द्वारा संचालित रहे।

क्षेत्र समिति द्वारा और दूसरी एजेंसियों द्वारा विभिन्न उद्योगों से लोगों को जो रोजगार मिला, उसे हम नीचे की सारणी में देख सकते हैं :—

सारणी संख्या–9

विभिन्न उद्योगों में लगी श्रम-शक्ति

वर्ष	घण्टे	दी गयी मजदूरी
1959–60	2,26,000	25,000)-
1960–61	1,50,000	20,000)-
1961–62	1,22,000	26 000)-
1962–63	1,32,000	24,500)-
1963–64	1,03,000	24,600)-

उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त क्षेत्र में समय–समय पर अनेक फुटकर कार्य भी किये गये जिनसे क्षेत्र के लोगों को लाभ मिला। भू-संरक्षण की दृष्टि से खेतों की मेड़-बन्दी का काम व्यापक रूप पर किया गया। शुरू में तो भू-संरक्षण कार्य में क्षेत्र के लोगों ने न केवल सहयोग नहीं दिया, बल्कि कहीं कहीं विरोध भी किया। बाद में क्षेत्र के अनेक गांवों में भू-संरक्षण का कार्य किया गया। भू-संरक्षण का कार्य

क्षेत्र के करीब 10 गांवों में वड़े पैमाने परहुआ। इसी प्रकार यहां लघु सिंचाई की भी कुछ योजनाएं चलीं। सालेपुर गांव में एक छोटे बांध का निर्माण किया गया। आदिवासी क्षेत्र में गरीबी की जो स्थिति है, उसमें बुवाई के समय बीजकी बड़ी समस्या रहती है। इस स्थिति का अनुचित लाभ साहूकार उठाते हैं और आदिवासी कर्ज के शिकार बनते हैं। क्षेत्र के वंजारी, ऊंटावद, बायखेड़ा, और रालामडंल गांवों में सबसे पहले बीज-भंडार कायम किये गये। बाद में अन्य गांवों में भी बीज-भंडार कायम हुए। इन भंडारों से लोगों को उचित दर पर बीज प्राप्त होता है। संयुक्त कृषि सहकारी समिति, टवलाई द्वारा गांव के सर्वेक्षण के बाद पता चला कि गांव में 45 मुख्य टुकड़ों के स्थान पर अब बटवारे के कारण जमीन के 283 टुकड़े हो गये हैं। इस स्थिति में खेती अनार्थिक होने लगी। एकाकी स्तर पर खेती के लिए साधन-सुविधा की भी कठिनाई होती है। खेती को नई दिशा देने के लिए टवलाई संयुक्त कृषि-सहकारी-समिति के गठन का प्रयास किया गया। इस काम में राज्य सरकार के कर्मचारियों ने और बैंक ने भी मदद की। राज्य-सरकार भी इस प्रकार की योजना को चलाने के लिए उत्सुक थी। टवलाई में श्रीफूलचन्द पटेल के प्रयत्न से उन्हीं की अध्यक्षता में यह समिति बनी। 12 किसान इसके सदस्य बने। इन सदस्यों ने अपनी 293 बीघा जमीन इस समिति को दी। प्रथम वर्ष समिति का उत्पादन बढ़ा। प्रयत्न एवं सफलता को देखते हुए धीरे-धीरे क्षेत्र के पटवार, कुन्दा, डोंगरी, दसोड़ा, धमामनोर और बिखरोन गांवों में भी इस प्रकार की समितियां बनीं। इन समितियों के अन्तर्गत कुल 710 एकड़ जमीन शामिल की गयी।

क्षेत्र में संयुक्त कृषि सहकारी-समिति का अनुभव अच्छा नहीं रहा। शुरू के कुछ वर्षों के बाद समिति के सामने आर्थिक संकट आया और उत्पादन में गिरावट आने लगी। विभिन्न एजेंसियों से मिला कर्ज रुक गया। इनकी असफलता के अनेक कारण बताए जाते हैं। जैसे (1) सामुदायिक भावना की कमी, (2) कार्य की प्रेरणा का अभाव (3) मजदूरी में ज्यादा खर्च, (4) प्रशासन और व्यवस्था का अधिक खर्च (5) कर्मचारियों में भ्रष्टाचार (6) आर्थिक संकट।

7

विविध प्रवृत्तियां

समग्र ग्राम-विकास की दृष्टि से समय-समय पर अनेक कार्यक्रम ग्रामभारती आश्रम की ओर से चलते रहते हैं। इन कार्यों से स्थायी और तात्कालिक दोनों प्रकार के लाभ की अपेक्षा रहती है। आश्रम आरंभ से ही गांव की और गांव वालों की समस्याओं को सुलझाने के लिए प्रयत्नशील रहा है। यही कारण है कि जब कभी गांव के लोगों के सामने कोई समस्या आती है, तो वे आश्रम में आकर अपनी बात रखते हैं। आश्रम भी उनकी समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करता है। आश्रम की ओर से अनेक प्रकार के सेवा कार्य भी होते रहते हैं। जैसे बाढ़, अकाल, अग्निकाण्ड आदि के समय संकट ग्रस्त लोगों की मदद, अनाथ, असहाय की सेवा आदि। रोगी सेवा के लिए आश्रम को बहुत प्रसिद्धि मिली है। लोक-शिक्षण की दृष्टि से आश्रम में चल रहे पंचायती-राज प्रशिक्षण केन्द्र का अपना विशिष्ट स्थान है।

1. पंचायतीराज-प्रशिक्षण—देश में पंचायती राज कायम होने के साथ ही साथ गांवों के प्रतिनिधियों और पंचायत के काम में लगे कर्मचारियों के प्रशिक्षण का प्रश्न सरकार के सामने आया। पंचायती राज से जो अपेक्षा रखी गई है, उसमें यह जरूरी समझा गया कि इस काम में लगे लोगों को सैद्धान्तिक, व्यावहारिक और कानूनी जानकारी देने की व्यवस्था हो। गांव का नेतृत्व गांव के संरक्षक की भावना से गांव के सबके विकास और हित की बात सोचे और उसके लिए प्रयत्न करे, इस दृष्टि से भी सरपंचों आदि का प्रशिक्षण जरूरी है। मध्य प्रदेश सरकार की ओर से प्रदेश में इस प्रकार के कुछ प्रशिक्षण विद्यालय चलाये जाते हैं। इन प्रशिक्षण केन्द्रों के संचालन का भार साधारणतया प्रदेश की समाज सेवी संस्थाओं को सौंपा गया। ग्राम

भारती आश्रम में भी ऐसा एक प्रशिक्षण केन्द्र जनवरी, 1962 से काम कर रहा है।

राज सरकार इस कार्य में पूरी मदद करती है। भवन-निर्माण से लेकर सामान्यतया केन्द्र का सारा चालू खर्च सरकार ही चलाती है। लेकिन व्यवस्था एवं प्रशिक्षण की पूरी जिम्मेदारी आश्रम (संचालक) की होती है। ग्रामभारती आश्रम के पंचायती राज-प्रशिक्षण केन्द्र की ओर से सरपंचों और उप-सरपंचों के सात-सात दिनों के संस्थागत शिविर, पंचों के तीन-तीन दिनों के प्रवासी शिविर, पंचायत-मंत्रियों के पन्द्रह-पन्द्रह दिनों के शिविर चलाये जाते हैं। पिछले वर्षों में चले शिविरों की और उनसे लाभांवित सरपंचों आदि की संख्या इस प्रकार है—

सारिणी संख्या 10

पंचायतीराज प्रशिक्षण-केन्द्र के शिविर

शिविर का प्रकार	1961–62		1962–63		1963–64	
	शिविर-प्रशिक्षणार्थी		शिविर–प्रशि0		शिविर-प्रशि0	
	संख्या	– संख्या	संख्या	– संख्या	संख्या	– संख्या
सरपंच शिविर	1	56	3	54	4	96
उप सरपंच शिविर	1	25	1	20	–	–
पंच शिविर	5	197	24	1048	10	568
पंच-मंत्री-शिविर	–	–	6	272	7	290
नव-नियुक्त अधिकारी	–	–	1	22	–	–
बी. डी. सी. सदस्य	–	–	1	20	–	–

ग्रामभारती में जो शिविर चलते हैं उनमें शिविरार्थियों को सामान्य बातों के अतिरिक्त आश्रम जीवन का, सामूहिक भावना की और गांधी विचार आदि की विशेष जानकारी दी जाती है। पास-पड़ोस के गांवों में जो काम हुआ, उसे देखने का अवसर भी प्रशिक्षार्थियों को मिलता है। इस माध्यम से ग्राम भारती को गांधी विचार के साथ समग्र ग्रामसेवा के विचार को राज्य के अन्य जिलों के लोगों तक पहुंचाने का मौका मिलता है।

2. औषधि वितरण—रोगियों की सेवा जन सेवा और जन संपर्क का एक अच्छा माध्यम है। इससे रोगी को लाभ पहुंचने के साथ ही साथ संस्था को लोगों की सहानुभूति भी प्राप्त होती है। आदिवासी क्षेत्र में रोगों के सम्बन्ध में कई अन्य

विश्वास व्याप्त रहे हैं। ग्रामभारती आश्रम के वर्तमान मंत्री और टवलाई क्षेत्र में अपने सेवा-कार्य के लिए प्रसिद्ध श्री मांगी लाल जोशी के अनुसार इस क्षेत्र में बीमारी में दवा का उपयोग करने का बिल्कुल रिवाज नहीं था। लोग दवा से दूर भागते थे। इलाज के नाम पर जादू टोना और झाड़-फूंक के जरिए भूत-प्रेत को भगाने के रिवाज का विशेष प्रचलन था। लोगों में दवा के प्रति झुकाव पैदा करने के लिए काफी प्रयत्न करना पड़ा।

इस क्षेत्र में अनेक किस्म की बीमारियां व्याप्त थी। नारू, फोड़ा-फुंसी, खाज खुजली, बुखार, कान दर्द, सूखा रोग, दस्त, पेचिस आदि यहां के मुख्य रोग थे। इन बिमारियों से गांव के गांव परेशान रहा करते थे। लोग वर्षों इन बीमारियों से पीड़ित रहते थे, परन्तु वे किसी तरह का इलाज कराने की स्थिति में नहीं थे।

आश्रम की ओर से रोगों के बारे में लोगों के अन्ध विश्वास को समाप्त करने के लिए गांव-गांव घूमकर वातावरण बनाया गया। बीमारों को दवा घर-घर जाकर देने और उनकी सेवा करने से उनमें धीरे-धीरे विश्वास जागा। जब दवा से और रोगी सेवा से लोग ठीक होने लगे, तो लोगों का दवा में विश्वास पैदा हुआ और वे धीरे-धीरे दवाओं का उपयोग करने लगे। आश्रम की ओर से गांव-गांव जाकर दवा बांटने का और सेवा का कार्य किया जाता था। औषधोपचार का आरम्भ टवलाई गांव से हुआ बाद में पास-पड़ोस के गांवों में जाकर रोगियों को देखने और उन्हें दवा देने के लिए आश्रम के अतिरिक्त क्षेत्र के 8 गांवों में चिकित्सा उपकेन्द्र खोले गये। इन केन्द्रों पर व्यापक स्तर पर चिकित्सा का काम किया जाता था। रोगी इन केन्द्रों पर जाकर रोज अपना इलाज करवाते थे। शुरू के कई सालों तक राज्य के स्वास्थ्य विभाग ने और स्मारक निधि ने इस काम में मदद दी।

जब तक शासन के स्वास्थ्य विभाग की ओर से आश्रम को आयुर्वेदिक औषधियों की पेटियां निःशुल्क मिलती रहीं, तब तक क्षेत्र में औषधि वितरण और रोगी-सेवा का काम बराबर चलता रहा। यह सेवा सबके लिए सुलभ थी और निःशुल्क थी। हजारों लोगों ने इससे लाभ उठाया। इस कार्य के माध्यम से आश्रम क्षेत्र की जनता का विश्वास प्राप्त कर सका। आदिवासी क्षेत्र में जनता का विश्वास प्राप्त करना बहुत कठिन होता है। अपने आगे के कार्यों में आश्रम को गांवों के लोगों की जो सहानुभूति मिली, उसमें औषधि वितरण के इस कार्यक्रम का बहुत हाथ रहा। बाद में आश्रम अपने दूसरे कार्यक्रमों में व्यस्त हो गया। इसी बीच सरकार की ओर से दवा मिलना भी बन्द हुआ। दवा न मिलने के कारण आश्रम को औषधि वितरण का अपना काम समेट लेना पड़ा। इस बीच क्षेत्र की जनता का रोग संबंधी अन्ध-विश्वास भी काफी कम हुआ है और अब लोग अपनी बीमारियों की दवा कराने लगे

हैं। क्षेत्र में सरकारी औषधालयों का और निजी व्यवसाय करने वाले डाक्टरों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

आकस्मिक सेवा कार्य समय-समय पर क्षेत्रीय संकटों के अवसर पर आश्रम के लोगों द्वारा लोक-सेवा के विभिन्न काम होते रहे हैं। सन 1957 में यहां काफी जोरों की वर्षा हुई और नर्मदा की बाढ़ का पानी धरमपुरी में और क्षेत्र के अन्य कस्बों और गांवों में घुस गया। बाढ़ के कारण धरमपुरी में काफी नुकसान हुआ। आश्रम के विद्यार्थियों और कार्यकर्ताओं ने इस संकट के समय में मलवा हटाने और बाढ़-पीड़ितों को भोजन पहुंचाने जैसे कामों में काफी मदद की। आश्रम के 25-30 व्यक्तियों की टोली ने लगातार कई दिनों तक धरमपुरी जाकर वहां राहत के काम में मदद की। उन्हीं दिनों टवलाई में लगी आग से उत्पन्न संकट के समय में भी आश्रम के लोगों ने राहत कार्य किया।

सन् 1959 में मनावर में भारी बाढ़ आयी। इस बाढ़ के समय भी आश्रम के लोगों ने लम्बे समय तक मनावर जाकर बाढ़ पीड़ितों की सेवा-सहायता का कार्य किया। इसी प्रकार समय समय पर आने वाले आकस्मिक संकटों के मौकों पर सहायता पहुंचाने के लिए आश्रम के लोग सदा तत्पर रहते हैं।

आश्रम की प्रेरणा और प्रयत्न से टवलाई गांव के मोरीपुरा और टेड़ापुरा में दो वृद्ध आदिवासी महिलाओं के लिए निवास की व्यवस्था की गई। एक निराश्रित बुढ़िया के लिए गांव में निवास की कोई व्यवस्था नहीं थी। इस बुढ़िया के रहने के लिए घर बनाने का शुभारम्भ हुआ। कुछ ही दिनों में घर बन कर तैयार हो गया। 10 × 10 के नाप वाले इस घर को बनाने में गांव के युवकों ने भी पूरा सहयोग दिया। इसी प्रकार चम्पा मां नाम की 100 साल से अधिक उम्र वाली आदिवासी बुढ़िया के पास भी अपने परिवार के साथ रहने के लिए निवास की कोई समुचित व्यवस्था नहीं थी। सन् 1957 में बाबा राघवदास यहां अपनी पदयात्रा के दौरान आये थे, उस समय उन्होंने चम्पा मां से बातें की थीं और वे उनके टूटे फूटे झोंपड़े को देख कर द्रवित हुए थे। आश्रम ने शासन और गांव वालों की मदद से चम्पा मां के लिए तीन कमरों वाला एक पक्का घर बनवाया और 1 मई, 1959 के दिन समारोह पूर्वक चम्पा मां को उनके नये घर में बसा दिया।

क्षेत्र में हरिजनों के साथ असमानता का व्यवहार एक आम बात है। इस वातावरण से हरिजनों एवं सवर्णों के बीच तनाव की स्थिति भी पैदा होती रहती है। पनघट के कुओं से पानी न भरने देना, छुआछूत पालना, हरिजनों के साथ असमानता

का व्यवहार करना आदि यहां की आम बातें हैं। आश्रम के श्री मांगीलाल जोशी ने इस भेद-भाव को दूर करने के लिए काफी मेहनत की। सवर्णों और हरिजनों के बीच खड़े होने वाले तनावों को दूर करने का प्रयत्न भी बराबर होता रहा है। सन् 1958 के आस-पास के वर्षों में यहां हरिजनों एवं सवर्णों के बीच तनाव की स्थिति रही। पास के झिरवी गांव में यह तनाव काफी बढ़ गया था। इसी प्रकार पलासिया गांव में भी दोनों वर्गों के बीच काफी तनाव रहा। हरिजन सेवक संघ के साथियों और श्री मांगीलाल जोशी के प्रयास से यहां का तनाव भी समाप्त हुआ।

पास-पड़ोस के गांवों से अनेक प्रकार के झगड़ों की बातें आश्रम के पास आती रहती हैं। आश्रम की ओर से इन झगड़ों को आपस में ही सुलझाने का प्रयास किया जाता है। अब तक इस प्रकार के कितने विवाद आश्रम में निपटारे के लिए आये, उनका मोटा विवरण इस प्रकार है—

सारणी संख्या-11

विवादों का निपटारा

प्रकार	संख्या
1. आपसी-पारिवारिक विवाद	150
2. आदिवासियों की जमीन पर गैर कानूनी कब्जे तथा जमीन सम्बन्धी अन्य विवाद	350
3. ऋण-निवारण-योजना से लाभान्वित परिवार (आश्रम के प्रयास से)	700
4. मार-पीट के झगड़े	250
योग :-	1450

इनके अतिरिक्त ऐसे विवाद भी आते रहते हैं, जिन्हें बाद में गांव के लोग स्वयं ही सुलझा लेते हैं। आश्रम में किसी प्रकार की पंचायत की या झगड़े सुलझाने की कोई स्थायी व्यवस्था नहीं है। लेकिन जब गांव के लोग या व्यक्ति अपने झगड़े लेकर आ जाते हैं और आश्रम में अपना विश्वास प्रकट करके विवाद निपटाने का आग्रह करते हैं, तो आश्रम के लोग इस काम में उनकी मदद करते हैं। विवादों का निपटारा आम तौर पर आपसी समझौते के आधार पर होता है। जिन विवादों में शोषण और अन्याय आदि की स्थिति रहती है, उनको निपटाने में सामाजिक दबाव

का भी उपयोग किया जाता है। विवादों का यह निपटारा समाज-सुधार और लोक-शिक्षा का माध्यम भी बनता है। खासकर सामाजिक भेद-भाव से संबंधित विवादों को सुलझाने में काफी लोक-शिक्षण होता है। इससे जातिगत दुराव कम होता है और आपसी तनाव भी घटता है, लेकिन कभी-कभी इस प्रयत्न में आपसी मनमुटाव बढ़ता भी है। कुल मिलाकर आश्रम का प्रयास यही रहता है कि ग्राम-समाज का सही शिक्षण हो और आपस की दूरी तथा भेद-भाव कम हो।

भूदान-ग्रामदान का काम यहां के कार्यक्रमों के साथ हमेशा जुड़ा रहा है। आश्रम की स्थापना के वर्ष से ही क्षेत्र में भूदान की प्राप्ति के लिए पदयात्राओं का आयोजन किया जाता रहा है। भूदान, ग्रामदान, प्राप्ति के लिए धार, पश्चिम निमाड़ और इन्दौर जिलों में हुई पदयात्राओं के परिणाम स्वरुप 400 बीघा जमीन भूदान में प्राप्त हुई। यह जमीन गांव के भूमिहीनों के बीच वितरित की गयी। सन् 1957 में बाबा राघवदास जी की पदयात्रा इस क्षेत्र में चली। विनोबाजी की यात्रा भी इस क्षेत्र से निकली। भूदान-ग्रामदान के प्रचार के लिए क्षेत्र में शिविरों और सम्मेलनों का आयोजन बराबर होता रहा है। इस काम के साथ सर्वोदय साहित्य की बिक्री का काम में भी यहां काफी दिनों तक चला। कहा जा सकता है कि भूदान-ग्रामदान के माध्यम से क्षेत्र में ग्रामस्वराज्य का विचार पहुँचाने का काफी प्रयत्न हुआ है।

श्रमदान यहां के रचनात्मक कार्यों का प्रतीक सा बन गया है। आज भी आश्रम में एक घण्टे का समय सामूहिक श्रम के लिए रखा जाता है। श्रमदान के माध्यम से गांव को एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न तो होता ही है साथ ही इसके कारण सामूहिक कार्य का अभ्यास भी होता रहता है। आश्रम में श्रमदान के काम के साथ यह परम्परा गांव में भी विकसित हो, इस बात का भी प्रयास किया जाता रहा है। पास-पड़ोस के गांवों में भी श्रमदान की एक परम्परा विकसित हुई है। वैसे, यह परम्परा नियमित चलने की स्थिति में तो नहीं है, फिर भी जब आवश्यकता होती है, गांव के लोग श्रमदान के लिए इकट्ठा हो जाते हैं। अब तक टवलाई ग्राम में कई प्रकार के कार्यों के लिए सामूहिक श्रमदान किया गया है। इन कार्यों में मुख्य हैं, बालवाड़ी भवन का निर्माण, तिलकभवन निर्माण, वृद्धाओं के निवासों का निर्माण, शिक्षक-निवास निर्माण, मंदिर निर्माण और सड़क निर्माण।

गाते का मेला टवलाई के निकट लुण्हेरा गांव में हरसाल कार्तिक सुदी 13 की रात को भिलाला जाति के आदिवासी समाज का प्रसिद्ध और प्राचीन मेला लगता है। आश्रम के प्रारम्भिक वर्षों में हमने इस मेले को सम्भालने और इसके रूप-स्वरूप

को निखारने के काम में काफी मेहनत की थी और उसमें हम लोगों को सबके सहयोग से उल्लेखनीय सफलतायें भी मिली थीं। लुण्हेरा गांव का यह मेला 'गाते के मेले' के नाम से प्रसिद्ध है। इस मेले में दूर के हजारों भिलाला आदिवासी एक रात के लिए इकट्ठा होते हैं और गाते के मैदान में रात भर अपने छोटे-बड़े ढोलों और दूसरे वाद्यों की ताल पर नाचते-कूदते हैं। ये अपनी मान-मिन्नतें भी गाते पर पूरी करते हैं। गाते के निमित्त से उस रात लुण्हेरा गांव के दूकानदारों का भी बड़ा-सा मेला लगता है। एक रात में आदिवासी लोग खाने-पीने की, पहनने-ओढ़ने की और तरह-तरह के अपने शौकों की चीजों पर हजारों-लाखों रुपया खर्च कर देते हैं। बैल-गाड़ियों, घोड़ों, सायकलों आदि का बड़ा जमघट वहां लगता है। हजारों लोग दूर-दूर से पैदल भी पहुंचते हैं। इस मेले में शराब पीते थे और फिर शराब के नशे में उनके बीच कई तरह के झगड़े हुआ करते थे। अकसर मेले की रात कुछ हत्यायें भी हो जाती थीं। पुलिस का काफी इन्तजाम रहता था। सारी स्थिति का अध्ययन करने के बाद सन् 1955 में आश्रम परिवार ने इस मेले की व्यवस्था में रुचि लेनी शुरू की और इसमें तरह-तरह की जो बुराइयां घुस गई थीं, उन्हें क्रम-क्रम से दूर करने का प्रयत्न किया। मेले की रात में शराब की बिक्री पर रोक लगाने और शराब की दूकान पर निगरानी रखने की व्यवस्था हुई। मेले के अवसर पर जिला कलेक्टर सहित जिले के विभिन्न विभागों के अधिकारियों को आमंत्रित किया गया। कला-पथकों के कार्यक्रम शुरू हुए। आकाशवाणी, इन्दौर ने मेले के कार्यक्रमों में रुचि ली। मेले में गाये जाने वाले आदिवासी बहनों के गीत टेप किये गये और उन्हें आकाशवाणी से प्रसारित किया गया। इस तरह कई साल तक मेले के दिनों में काम करते रहने से मेले के स्वरुप में काफी सुधार हुआ। मेले के मैदान में बने कच्चे कुएं को पक्का किया गया। वहां पानी की टंकी बनाई गई। स्नान घर बनाये गये और मेले में आने वाले लोगों के लिए पीने के साफ पानी की व्यवस्था की गई। आदिवा-सियों की ना समझी से अनुचित लाभ उठाने वाले दूकानदारों को रोका-टोका गया। इस तरह गाते के कारण आश्रम वालों का सम्पर्क क्षेत्र के दूर-दूर के आदिवासी समाज के साथ हुआ। किन्तु खेद इस बात का है कि इस चीज को आगे हम इसी गति से सम्भाल नहीं सके।[1]

इसी प्रकार विविध रचनात्मक कार्यों के माध्यम से गांवों के साथ आश्रम का सम्पर्क जुड़ता रहा है। आश्रम की ओर से जो भी कार्यक्रम सुझाये जाते हैं या हाथ में लिए जाते हैं, उनके पीछे दृष्टि यह रहती है कि गांव के लोगों में ऐसी शक्ति

---

1 श्री काशिनाथ त्रिवेदी के 7 अप्रैल, 1975 के पत्र से।

आ जाए जिससे वे इन कामों को स्वयं कर सकें। यही कारण है कि सामान्यतः आश्रम काम की जिम्मेदारी गांव वालों पर छोड़ने की नीति में विश्वास करता है। यह भी प्रयास रहता है कि गांव के लोग अपनी समस्याएं स्वयं सुलझा लें। लेकिन जैसा कि हमने ऊपर देखा, यहां जो भी कार्य चले, उनमें काफी उतार-चढ़ाव आते रहे। इसके कारण कई अच्छे और उपयोगी काम असमय में ही बन्द हो गये। ऐसे कई काम आज भी बन्द पड़े हैं। आश्रम ने जो भी कार्य किये, उनके स्वरुप पर और उनमें आये उतार-चढ़ावों पर हम अगले अध्याय में विचार करेंगे।

8

उपसंहार

परिस्थिति—आदिवासी क्षेत्र में निवास करने वाली जनता की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति ऐसी है कि अज्ञान, शोषण और अत्याचार उसके नित्य के व्यवहार से जुड़ गया है। आदिवासी समाज के विकास के लिए राज्य की ओर से भी प्रयास किये जा रहे हैं। राज्य के अतिरिक्त स्वयं सेवी व्यक्ति एवं संस्थाएँ भी इस काम में काफी मददगार रही हैं। मध्यप्रदेश में आदिवासियों की आबादी पर्याप्त है। गांधी विचार से जुड़ कर समाज सेवा करने वाली संस्थाओं में मध्यप्रदेश गांधी स्मारक निधि प्रमुख है। गांधी स्मारक निधि की स्थापना के बाद पूर्व मध्य भारत क्षेत्र में एक ऐसे केन्द्र की आवश्यकता महसूस की गयी, जहां गांधी विचार के साथ समग्र सेवा का प्रयोग किया जा सके। टवलाई के ग्रामभारती आश्रम की स्थापना एक संयोग का परिणाम है। खादी-ग्रामोद्योग आयोग के एक अधिकारी का ध्यान इस क्षेत्र में ताड़ गुड़ उद्योग की स्थापना की ओर गया और उन्होंने अपने एक कार्यकर्त्ता को यहां भेज दिया। कार्यकर्त्ता की रुचि रचनात्मक थी, इस कारण पूर्व मध्य भारत के रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं की मदद से यहां गांधी विचार का एक शिविर लगा। इस शिविर में टवलाई गांव और क्षेत्र के लोगों ने अच्छी संख्या में भाग लिया। शिविर में आश्रम की स्थापना की चर्चा शुरू हुई। इसे आन्तरिक प्रेरणा या संयोग ही कहना होगा कि टवलाई गांव के श्री फूलचन्द पटेल ने आश्रम के लिए जमीन देने की घोषणा की। इस घोषणा बाद मध्य भारत गांधी स्मारक निधि ने टवलाई में आश्रम की स्थापना का निर्णय लिया। बाद में यहां आश्रम की विविध प्रवृत्तियां आगे बढ़ती गयी इन प्रवृत्तियों के साथ ही आश्रम वालों का गांव के साथ सम्पर्क बढ़ा। आश्रम में और गांव में चलने वाली प्रवृत्तियों से यहां के समाज को भौतिक और वैचारिक स्तर पर

जो लाभ मिला, उसका उल्लेख पिछले अध्यायों में किया जा चुका है। जहां तक क्षेत्रीय परिस्थिति का सवाल है, यह क्षेत्र हर दृष्टि से पिछड़ा रहा है। अन्धविश्वासों के साथ-साथ शिक्षा का अभाव और शोषण यहां के आदिवासी समाज के नित्य जीवन का अंग बना हुआ है। आदिवासी बहुल क्षेत्र होने के कारण यहां महाजनों के शोषण ने गहरी जड़े जमा रखी हैं।

सेवा की आवश्यकता—इस क्षेत्र की जो परिस्थिति सामने आयी और संस्था के माध्यम से सेवा की जो परम्परा यहां विकसित हुई और उससे यहां के समाज को जो लाभ मिला, उस पर से यह कहा जा सकता है कि समाज सेवा की विशेष आवश्यकता है। खासकर ऐसे क्षेत्र में, जहां के लोग सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक और सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से पिछड़े हुए हैं, वहां तो इस प्रकार की संस्था द्वारा कई तरह के सेवा कार्य किये जा सकते हैं। इन कार्यों को नीचे लिखे अनुसार गिनाया जा सकता है—

1. गांव के लोगों में आत्म विश्वास पैदा करना।
2. अन्ध विश्वासों-जैसे भूत-प्रेत-बाधा में विश्वास, दवा के प्रति अरुचि,शिक्षा के प्रति अरुचि आदि को समाप्त करना।
3. सामाजिक हीनता की भावना को दूर करना।
4. सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक शोषण समाप्त करने की आवश्यकता अनुभव कराना और उस दिशा में प्रयास शुरू करना।
5. महाजनों के शोषण से मुक्ति का मानस बनाना और उसके लिए जरूरी ठोस कदम उठाना।
6. आर्थिक विकास की बाधाओं को दूर करने के साथ विकास के लिए आवश्यक सुविधायें उपलब्ध कराना।

कार्य की बाधायें—टबलाई आश्रम में विविध प्रकार की प्रवृत्तियां चली हैं। इन प्रवृत्तियों में कुछ तो आज भी चल रही हैं, परन्तु कई प्रवृत्तियां बीच में बंद हुई हैं या उनकी गति मन्द पड़ गयी है। आश्रम में चली या आश्रम द्वारा प्रेरित प्रवृत्तियों को हम मुख्य दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं (1) आश्रम में चलने वाली प्रवृत्तियां जैसे बुनियादी विद्यालय, कृषि, पशुपालन, वस्त्र उद्योग, पंचायती राज प्रशिक्षण, लोक शिक्षण, शिविर-सम्मेलन-औषधि वितरण आदि (2) आश्रम की सलाह से या मार्ग दर्शन से गांव वालों द्वारा सरकारी या अर्ध सरकारी ऐजेन्सियों की मदद से चलाये गये कार्य। इनमें से कुछ कार्यों के लिए अलग संस्थाएं भी बनीं जैसे संयुक्त कृषि

सहकारी समिति, सघन विकास क्षेत्र समिति, ऋण मुक्ति सहकारी समिति, बहुउद्देशीय कारिणी सहकारी समिति आदि ।

उक्त कार्यों की मौजूदा स्थिति पर विचार करने के पूर्व हम उन कठिनाइयों पर संक्षेप में विचार करना चाहेंगे जिनके कारण कार्य में कठिनाइयां आती रही हैं। क्षेत्र की परिस्थिति ऐसी है कि उसके कारण आश्रम के काम में और दूसरे कामों में बाधायें आती रही हैं ।

1-परम्पराए-आदिवासी क्षेत्र की अपनी परम्पराओं के कारण और लोगों के सामाजिक पिछड़ेपन के कारण यहां के काम में बाधायें उत्पन्न होती रही हैं । जैसे, अज्ञानजन्य अन्धविश्वास, परम्परागत शोषण के कारण अविश्वास, व्यापक अशिक्षा आदि ।

2-साहूकार : किसी भी ऐसे कार्य में, जिससे साहूकार समाज को तत्काल या भविष्य में नुकसाने की आशंका रहती है, यह समाज अपने बसभर बाधा पहुंचाने का प्रयास करता रहता है । जैसे, ऋण-निवारण, शराब बन्दी, व्यसन मुक्ति और ऐसे धन्धे जिनसे इस समाज को नुकसान का डर हो ।

3-उच्च जातियां—उच्च जातियों के लोग आदिवासियों और अन्य पिछड़ी जातियों के विकास से भयभीत रहते हैं । परम्परागत, रुढ़िवादी समाज व्यवस्था के कारण उच्च जाति के लोगों को गांवों से अनेक प्रकार के लाभ होते रहते हैं । इस कारण आदिवासियों और हरिजनों के विकास के काम में अथवा उनके साथ बराबरी का व्यवहार करने के काम में उच्च जातियों के लोग बाधा पहुंचाने का प्रयास करते हैं।

4. राजनीतिक दल-क्षेत्र के राजनीतिक दल यह जान चुके हैं कि आश्रम की प्रवृत्तियों से किसी खास दल को कोई लाभ नहीं है । आश्रम किसी दल का समर्थन नहीं करता । दूसरी तरफ आश्रम के कुछ कार्यों से और उसके तटस्थ रहने से कभी-कभी इन दलों को अपनी हानि की भी आशंका रहती है । इस कारण आश्रम को अपने अनेक विकास कार्यों में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है और आज भी करना पड़ रहा है ।

5. कुशलता का अभाव—यहां विकास और सेवा संबंधी कार्यों के लिए अनेक समितियां बनीं और कई कार्यों का विस्तार भी किया गया, किन्तु स्थानीय लोगों में प्रशासनिक और तकनीकि कुशलता का अभाव होने के कारण सभी कार्य सुचारु रूप से नहीं चल सके । शिक्षा की व्यापक कमी भी एक बड़ी बाधा रही है ।

6. स्वार्थ एवं भ्रष्टाचार भी एक ऐसी बाधा है, जिसके कारण विकास कार्य में रुकावटें पैदा होती हैं।

ग्रामभारती टवलाई में रचनात्मक कार्य की जो स्थिति रही उसकी आत्म-समीक्षा संस्था के संस्थापक श्री काशिनाथ त्रिवेदी ने बहुत विनम्र भाषा में की है। इससे कार्य की सीमा का अन्दाज लगता है। उनकी आत्म समीक्षा इस प्रकार है–जिन विचारों और आदर्शों से प्रेरित होकर यहां समग्र ग्राम सेवा की दृष्टि से समय-समय पर विविध प्रवृत्तियां शुरू हुई, उन सबको दृष्टिपूर्वक, योजनापूर्वक, कुशलतापूर्वक, एकाग्रता से और सातत्य से चलाने वाले कर्तव्यनिष्ठ और प्रामाणिक साथियों की शुरू से अब तक बड़ी कमी रही। संयोगवश जब, जिस काम के लिए, जो साथी मिल गये, उनकी मदद से काम शुरू करने, चलाने और बढ़ाने की जो कोशिशें यहां इन सालों में हुई, वे उतनी सफल नहीं हो सकी, जितनी होनी चाहिए थीं। शुरू किये कई काम अधबीच में ही छोड़ देने पड़े, इसके कई कारणों में एक मुख्य कारण सही और सक्षम कार्यकर्ता साथियों की कमी भी रही। टवलाई क्षेत्र से तो हमें अपने काम के लिए नहीं के बराबर ही कार्यकर्त्ता साथी मिल सके। आश्रम के आरम्भिक वर्षों में लोकशाला का जो काम शुरु किया था, उसके मूल में एक अपेक्षा यह भी थी कि क्षेत्र के काम के लिए क्षेत्र के ही नवयुवक कार्यकर्त्ता खड़े हो सकेंगे और वे अपने-अपने हिस्से में आये कामों को आत्मीय भाव से सम्भाल कर उनके विकास और विस्तार में रुचि लेते रहेंगे। उनकी ही मदद से आस पास के गांवों में भी तरह तरह के रचनात्मक कामों का जाल बिछाने की कल्पना और योजना थी, पर प्राप्त परिस्थिति में वह अब तक तो सपने की सम्पद् ही बनी हुई है।

टवलाई-क्षेत्र की अपनी मूलभूत कमियों के साथ ही साथ हम लोगों की अपनी कमियां भी कुछ इस तरह जुड़ गई कि जिससे आश्रम के और क्षेत्र के काम में जो जान आनी चाहिये थी, वह बहुत चाहने और यत्न करने पर भी आ नहीं सकी।

आश्रम के संचालक के नाते मैं स्वयं भी इस काम के साथ उतना न्याय नहीं कर सका, जितना मुझे करना चाहिए था और जिसकी अपेक्षा मुझसे रखी गई थी। मेरे अपने स्वभाव की और मेरी अपनी कार्यशक्ति तथा कार्य पद्धति की जो मर्यादायें रही हैं, मैं मानता हूं कि उनके कारण भी यहां के विविध कामों के सही विकास और विस्तार में रुकावटें खड़ी हुई है। बहुत चाहने और कोशिश करने पर भी मैं अपनी इन कमियों और मर्यादाओं से ऊपर उठकर काम करने की मनः स्थिति में आ नहीं सका। मुझे प्रायः लगता रहता है कि मेरी जगह दूसरे कोई अधिक सूझ-बूझ वाले और शक्ति तथा दृष्टि रखने वाले साथी यहां इस काम को सम्हालते, तो बहुत सम्भव

था कि काम अधिक गति से सही दिशा में बढ़ता और इस क्षेत्र के लिए वरदान रूप बनता। मैंने अपनी इन कमियों को तीव्रता से अनुभव किया है और गुरुजनों तथा साथियों से बार-बार अनुरोध भी किया है कि मेरे कारण संस्था के विकास में जो बाधाएं आ रही है, उन्हें ध्यान में रख कर मुझे इस काम से मुक्ति दे दें और मुझ से अधिक योग्य तथा सक्षम साथी को यहां का काम सौंपें, जिससे काम का ठीक विकास भी हो और क्षेत्र की जनता को उसका अधिक से अधिक लाभ भी मिले। किन्तु योग कुछ ऐसे है–कि न मुक्ति पा सक रहा हूं और न यहां का काम अधिक सक्षम और समर्थ साथियों के हाथों में जा पा रहा है। एक गहरी कुण्ठा कि सी स्थिति बनी हुई है। मेरे मन पर इसका भारी बोझ बना रहा है। पर अभी तक इस बोझ को उतार फेंकने की स्थिति पकी नहीं है। पता नहीं, कब और कैसे पकेगी ? आश्रम के और मेरे साथ एक बड़ी परेशानी शुरू से यह भी रही कि यद्यपि आश्रम पूरे मध्य-भारत-क्षेत्र की दृष्टि से खोला गया था और मध्य भारत गांधी स्मारक निधि की अपनी संस्था के रूप में इसका शुभारम्भ हुआ था, फिर भी जैसे-जैसे समय बीतता गया, जाने-अनजाने भावना यही बनती गई कि आश्रम उसके संचालन में लगे व्यक्ति का है और उसी को उसका सारा बोझ भार उठाना है। प्रान्त के सब गुरुजनों और साथियों का संयुक्त आधार और मुख्य सहयोग आश्रम को मिल नहीं सका, इसके कारण भी मध्य-भारत क्षेत्र की इस एक मात्र संस्था के सही और समुचित विकास में कुछ मूलभूत कमियां रह गई। इन्हें टाला जा सकता, तो शायद स्थिति कुछ दूसरी ही बनती।[1]

यहां जो भी कार्य-योजनायें बनी उन सबकी अपनी एक सीमा रही। शिक्षा, आर्थिक विकास और समाज सेवा इन तीनों क्षेत्रों में जो भी कार्य हाथ में लिए गये, उनका आरम्भ काफी उत्साह पूर्ण रहा और वे लक्ष्य की ओर बढ़ते दिखाई पड़े। आश्रम की विविध प्रवृत्तियों में से शिक्षा एवं कृषि-कार्य की प्रवृत्ति भी उत्साह-वर्धक स्थिति में चलने के बाद उनमें धीरे-धीरे शिथिलता आने लगी और कई बन्द भी हो गई।

संस्था ने जो उतराव चढ़ाव देखे तथा उसके सामने जो कठिनाइयाँ कार्यकर्त्ता की, साधन की, क्षेत्र की कठिन परिस्थिति आयी उसका विस्तार पूर्वक जिक्र ऊपर किया गया है। श्री काशिनाथ त्रिवेदी ने कार्य की सीमा को और कमियों को जिस रूप मे स्वीकार किया है, वह रचनात्मक क्षेत्र में कार्य करने वालों के लिए प्रेरणादायी है। इससे अपने कार्य की आत्मसमीक्षा कर आगे अधिक सतर्कता से कार्य करने की प्रेरणा मिलती है।

---

1 श्री काशिनाथ त्रिवेदी, उक्त पत्र से,

आर्थिक विकास की दृष्टि से जो संस्थाएं बनीं और जो कार्य चले, अनेक कारणों से उनकी प्रगति रुक गयी। सघन विकास की क्षेत्र समिति का कार्य आज खादी तक ही सीमित रह गया है। इस समिति की ओर से चलने वाले अन्य कई कार्य बन्द हो गये। इन कार्यों के बन्द होने के मुख्य कारण ये माने जा सकते हैं—

(क) जो ग्रामीण उद्योग यहां शुरू हुए, उनमें क्षेत्र के लोगों की रुचि नहीं थी। उनका अभ्यास और संस्कार इन उद्योगों के अनुरूप नहीं था।

(ख) तकनीकि ज्ञान की कमी।

(ग) बाजार की सुविधा का अभाव।

(घ) आर्थिक कठिनाइयां।

(च) कर्मचारियों के उचित सहयोग की कमी।

क्षेत्र समिति के कार्यों के बन्द होने का एक बड़ा कारण यह भी रहा कि जो भी ग्रामीण उद्योग शुरू किये गये, उनके लिए उपयुक्त स्थान का, आवश्यक व्यापारिक कुशलता का और अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि का तटस्थता से विचार नहीं किया जा सका।

संस्था की प्रेरणा से क्षेत्र में आर्थिक विकास का और शोषण मुक्ति की दृष्टि से जो संस्थाएं बनीं, वे कई कारणों से आगे नहीं चल सकीं। यहां ऐसी मुख्यतः दो संस्थायें बनीं। एक संस्था ऋण-निवारण-योजना की दृष्टि से टबलाई में बनी। इस संस्था ने ऋण-निवारण-योजना से प्रेरणा लेकर क्षेत्र में इस दिशा में काम करने का प्रयास किया। दूसरी संस्था संयुक्त कृषि की योजना के अन्तर्गत बनी।

पहली संस्था के शिथिल होने के कारणों की तलाश करने पर ये बातें सामने आयीं (1) आदिवासी समाज में महाजन का प्रवेश आज जिस रूप में है, उसके कारण औसत आदिवासी महाजन की पकड़ से मुक्त हो नहीं पाता है। महाजन उसके रोज-रोज के जीवन के साथ जुड़ गया है। इस कारण सारी कोशिशों के बावजूद ऋण-मुक्ति के लिए बनी संस्था की ओर लोग आकर्षित नहीं हो पाये। (2) जो सुविधाएं महाजन उन्हें देता है, वे सुविधायें समिति उन्हें नहीं दे पाती। जैसे, चाहे तब बिना किसी खास कार्यवाही के उसे महाजन से कर्ज प्राप्त हो जाता है, पुराने कर्ज का भुगतान किये बिना उसे नया कर्ज मिल जाता है, वह महाजन से वस्तु या नकद किसी रूप में कर्ज पा लेता है। (3) आदिवासी समाज में व्याप्त अशिक्षा के कारण औसत

आदिवासी कानूनी कार्यवाही से और लिखा-पढ़ी से घबराता है। (4) समिति के कर्मचारियों के कानूनी दावपेच और समिति के सामने पैसे की कमी आदि कुछ ऐसे कारण हैं, जिनसे इस समिति का काम रुक सा गया है।

अतएव कहा जा सकता है, ऋण-निवारण-कानून के अमल के मामले में आदिवासी क्षेत्र में महाजन के शोषण से मुक्ति पाने के लिए और ऋण प्राप्ति की सुविधा देने के लिए क्षेत्र में जो संस्था बनी थी, वह मौजूदा संगठनात्मक व्यवस्था के चलते यहां सफल नहीं हो सकी।

संयुक्त कृषि-सहकारी समिति के काम का भी कटु अनुभव रहा। राज्य सरकार की प्रेरणा से सबसे पहले टबलाई में और बाद में क्षेत्र के अन्य गांवों में करीब एक दर्जन संयुक्त कृषि सहकारी समितियां बनीं। आज इन समितियों में प्राय: सभी सदस्यों में रोष है। समितियों को घाटा हुआ है और सरकार उस घाटे की पूर्ति के लिए किसानों पर जोर डाल रही है। समिति के सदस्य इस असफलता के जो कारण बताते हैं, उन्हें हम इस रूप में गिना सकते हैं—

1. ये समितियां सरकारी प्रयास से बनीं, इस कारण आरम्भ से ही यहां नौकरशाही का प्रवेश हो गया।

2. इनसे सम्बद्ध सरकारी कर्मचारी घूस लेने और दूसरे गलत कार्य करने के प्रयास भरसक करते रहें।

3. सरकारी कार्य होने के कारण (1) मजदूरी का खर्च काफी बढ़ा। (2) व्यवस्था खर्च बहुत पड़ा।

(3) ऊपर के अधिकारियों का सही मार्गदर्शन नहीं मिला।

समिति के सदस्यों ने भी इस काम में पूरा सहयोग नहीं दिया।

आश्रम की ओर से औषधि-वितरण, गांव के झगड़े सुलझने में मदद, विचार प्रचार, शिक्षण और प्रौढ़ शिक्षा आदि के कार्य आरम्भ से चलते रहे हैं। इन कार्यों में औषधि-वितरण का कार्य अब बन्द है। क्षेत्र में कुछ नये सरकारी औषधालयों खुलना इसका एक कारण है। सरकार की ओर से मिलने वाली आयुर्वेदिक दवाओं की पेटियों न मिलना दूसरा मुख्य कारण है। अन्य कार्य पहले की भांति चल रहे हैं। यहां इतना जरूर कहा जा सकता है कि जिस उत्साह से समाज-सेवा के नाम पर चलने वाली प्रवृत्तियां पहले गांवों में चलायी जाती थीं, वह उत्साह अब नहीं रहा है। इच्छा रखते हुये

भी अब आश्रम गांव को उतना समय नहीं दे पाता, जितना पहले देता था।

शिक्षा आश्रम की प्रमुख और आरंभिक प्रवृत्ति रही है। बालवाड़ी से लेकर उच्चतर माध्यमिक तक की शिक्षा की व्यवस्था आश्रम में है। इसके अतिरिक्त, पंचायती राज प्रशिक्षण केन्द्र के माध्यम से गांवों के सरपंचों आदि को प्रशिक्षित करने का सिलसिला भी जारी है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आज आश्रम की मुख्य प्रवृत्ति शिक्षा है।

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर यहां के कार्यों की भावी दिशा के सम्बन्ध में कुछ बातें कही जा सकती है। समाज-सेवा के लिए स्थापित आश्रम या संस्था को अपना स्वावलम्बन साधते हुए समाज के लिए प्रकाश स्तम्भ बनना आवश्यक है। इस दृष्टि से उसे बाहर के सब प्रतिबन्धों से अपने को यथा सम्भव मुक्त रखना चाहिए। इसके अनुसार राज्य, व्यक्ति या संस्था से मुक्ति भी आवश्यक हो जाती है। जो समस्यायें इस आश्रम के सामने हैं प्रायः वे ही अन्य आश्रमों या संस्थाओं के सामने भी है। इसलिए यदि नीचे लिखी बातों को ध्यान में रखकर आश्रम के कार्य को गति प्रदान करने का प्रयास किया जाय, तो शायद कार्य में नई गति और उत्साह आये।

(क) स्वावलम्बन—आश्रम को अपने लिए इस प्रकार के आर्थिक साधन विकसित करने चाहिए, जिनसे आश्रम के सदस्यों को जीविका के लिए दूसरों पर निर्भर न रहना पड़े। यहां की स्थिति को देखते हुए ये साधन नीचे लिखे स्त्रोतों से प्राप्त हो सकते हैं (1) कृषि का विकास करके। (2) कोई ऐसा ग्रामीण उद्योग स्थापित करके जिससे गांव के लोगों के प्रशिक्षण के साथ ही आश्रम के सदस्यों को भी आर्थिक आधार मिले। (3) शैक्षणिक प्रवृत्तियों से प्राप्त आय जो कि आज शासकीय अनुदान के माध्यम से विद्यालय के अध्यापकों के लिए सुलभ है। किन्तु यदि विद्यालय को पूर्णतः प्रयोगात्मक बनाना हो, तो सरकारी अनुदान का आधार छोड़ना होगा। उस स्थिति में विद्यालय के स्वावलम्बन की बात सोचनी होगी। परन्तु शायद अभी इतनी तैयारी नहीं है। (4) क्षेत्र से मदद प्राप्त की जाये। (5) दान आदि का सहारा लिया जाये।

(ख) गांव से सम्पर्क—आश्रम के उद्देश्यों को देखते हुए यहां यह प्रयास बराबर रहना चाहिये कि गांव से निकटता दिन प्रति दिन बढ़े। गांव के लोग आश्रम को अपना घर समझें, यही नहीं उसे अपना अविभाज्य अंग भी मानें।

(ग) लोक-शिक्षण-प्रचार-प्रसार आदि की विविध प्रवृत्तियां बराबर चलती रहनी चाहिए। समाज के कमजोर वर्ग के हितो की रक्षा का सतत प्रयास करते रहना आश्रम का कर्तव्य समझा जाना चाहिये।

(घ) नमूने की प्रवृत्तियां—आश्रम एक प्रकार का प्रकाश केन्द्र है। इस कारण यहां कुछ ऐसी प्रवृत्तियां चलनी चाहिए जो नमूने का हो। आश्रम एक प्रकार की प्रयोगशाला बने। इस प्रयोगशाला में ग्राम समाज की समस्याओं पर प्रयोग हो और समाज को सही मार्गदर्शन देने का प्रयास हो। ये प्रयोग ग्राम जीवन के किसी भी अंग या प्रश्न को लेकर किये जा सकते हैं। जैसे, शिक्षा, कृषि आदि।

(च) यहां की प्रवृत्तियों में शिथिलता न आये, इसके लिए जरूरी है कि जो काम हाथ में लिया जाये उसमें पूरी निष्ठा से लगा जाये। कार्य में उत्साह बनाये रखने का पूरा प्रयास किया जाये।

भाग 2

बुनियादी विद्यालय करजगांव : प्रयोग और कठिनाई

1

स्थापना का सन्दर्भ

करजगांव मध्यप्रदेश की बैतूल तहसील का एक छोटा सा गांव है। बेतूल से करजगांव जाने के लिये 3 मील की दूरी पर भढूस नामक स्थान पर पक्की सड़क छोड़नी पड़ती है। भढूस से रोढ़ा तक कच्ची सड़क है जो कि बरसात में कीचड़ से भर जाती है। रोढ़ा से करजगांव एक मील है। वैसे बरसात के अतिरिक्त हर मौसम में करजगांव तक साईकिल, बैलगाड़ी एवं जीप जाने लायक रास्ता रहता है। बैतूल से करजगांव की दूरी 6 मील की है। करजगांव का डाकघर रोढ़ा है जहां से रोज डाक आती-जाती है। भौगोलिक दृष्टि से करजगांव एवं पास पड़ोस के कुछ गांव मैदानी धरातल पर बसे हैं। लेकिन चारों ओर जंगल एवं पहाड़ियां साफ-तौर पर नजर आती है। बैतूल नजदीक होने के कारण काफी लोगों का व्यावसायिक सम्पर्क बैतूल से रहता है।

विद्यालय का संबंध प्रारम्भ से ही दो गांवों से रहा है 1—करजगांव और 2—नये गांव। दोनो गांव पास-पास हैं, केवल 6 फर्लांग का फासला है। विद्यालय में आम तौर से इन दो गांव के ही विद्यार्थी आते हैं। आगे के अध्ययन में भी इन दोनों गांवों का ही उल्लेख है।

करजगांव की कुल जनसंख्या तीन सौ के करीब है जबकि नये गांव में पांच सौ लोग हैं। दोनों गांव छोटे हैं। दोनों गांवों में सामाजिक दृष्टि से मध्यम सामाजिक स्तर की जातियों का प्रभाव है। कुनबी एवं पंवार दोनों मध्यम सामाजिक स्तर की

सारणी संख्या–12

जाति	करजगांव (परिवार संख्या)	नये गांव (परिवार संख्या)
1–कुनबी	4	49
2–पंवार	21	5
3–हरिजन	5	11
कुल	30	65

जातियां हैं। हरिजन निम्न सामाजिक स्तर की जाति है। सामाजिक भेद-भाव में हरिजन अन्य क्षेत्रों की तरह, अछूत माना जा रहा है। इन जातियों के लोगों का जातिगत धन्धा खेती है। स्वभावतः खेतिहर होने के कारण पहले प्रायः पूरा गांव खेती पर निर्भर रहता था। लेकिन यहां की खेती विकसित रही हो ऐसी बात नहीं है। मेहनती होने के बावजूद पद्धति पुरानी थी।

स्थापना की प्रारम्भिक पृष्ठभूमि :—

करजगांव में श्री ग. ऊ. पाटणकर का परिवार प्रारम्भ से शिक्षा एवं सामाजिक कार्यों में रुचि लेता रहा है। स्वयं श्रीपाटणकर गांधी विचार से प्रेरित रहे हैं। ये स्वभाव से भावनाशील व्यक्ति हैं। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा रोंढ़ा एवं बाद में कृषि मिडिल स्कूल पवारखेड़ा तथा राजकीय हाईस्कूल होशंगाबाद में हुई। कृषि-विज्ञान में स्नातक तक की शिक्षा नागपुर में पूरी की। नागपुर के विद्यार्थीकाल में श्री बनवारी लाल चौधरी से मैत्री हुई। यहीं वे गांधी-विचार से परिचित व प्रभावित हुये। दो वर्ष कृषि विभाग में और दो वर्ष शिक्षा विभाग में नौकरी की। दोनों जगह मन न लगने से सन् 45 में सरकारी अध्यापन कार्य छोड़कर सेवाग्राम चले गये। हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, महिला आश्रम, अ. भा. ग्रामोद्योग संघ में छः साल कृषि-बागवानी, ग्राम-सफाई आदि सिखाने का काम किया। अ. भा. चरखा संघ, गो सेवा संघ, कस्तूरबा-स्मारक निधि आदि संस्थाओं से भी घनिष्ट परिचय हुआ। बापू, आर्यनायकमजी, किशोरलाल भाई, आशादेवी, परनेरकरजी, जाजूजी, भवानी बाबू, कुमारप्पाजी, रामचन्द्रजी, विनोबा, काकासाहब, जैसे गुरुजनों के भव्य जीवन से प्रेरणा मिली।

बदलती परिस्थिति

1948 में देश में रचनात्मक क्षेत्र में कार्य करने वालों की परिस्थिति बदली।

गांधीजी ने गांव में काम करने की इच्छा रखने वालों के लिये लोक सेवक का विचार रखा था। समाज के सर्वांगीण विकास के लिये गांवों का विकास आवश्यक माना। नयी समाज रचना में नयी तालीम की भूमिका महत्व की मानी गयी। इसका वर्णन श्री धीरेन्द्र मजूमदार ने इस प्रकार किया है-जो लोग 1937 से ही गांधीजी की बताई हुयी तालीम से कुछ संबंध रखते हैं, वे जानते हैं कि शुरू में इसकी कल्पना बुनियादी शिक्षा के रूप में आयी, अर्थात् सात से चौदह साल तक के बच्चों की शिक्षा की बात आयी। लेकिन गांधीजी ने 1944 में, जेल से लौटने के बाद दुनियां के सामने राष्ट्रीय शिक्षा को नयी तालीम की संज्ञा देकर और उसकी परिधि गर्भ से मृत्यु तक बताकर तालीम की कल्पना ही बदल दी। फिर तो तालीम समाज-निर्माण का आधार बन गयी। इस कल्पना का सहज मतलब ही "नित्य नयी तालीम" है। इस प्रकार नयी तालीम का वास्तविक अर्थ बुनियादी तालीम हुआ। अर्थात् तालीम हमेशा समाज की नयी बुनियाद डालने का जरिया होगी।[1]

यह कहा जा सकता है कि स्वराज्य के आन्दोलन के दिनों में जैसे अनेक राष्ट्रीय शिक्षा के स्वतंत्र विद्यालय-विद्यापीठ आदि चलते थे वैसे ही भू-दान-ग्राम दान आन्दोलन के साथ नई तालीम का यह विद्यालय जन्मा। माना कि सर्वोदय समाज की स्थापना का नयी तालीम ही माध्यम है। जैसा कि विनोबा जी ने भी कहा-समाज परिवर्तन की कौनसी अहिंसक प्रक्रिया होगी, यह अगर सोचेंगे तो स्पष्ट होगा की शिक्षण ही वह एक प्रक्रिया होसकती है। इसलिये अहिंसक क्रान्ति में नयी तालीम अन्तर्निहित है। श्री धीरेन्द्र भाई ने इसे और अधिक स्पष्ट करते हुये कहा है-जिस समय गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा यानी नयी तालीम की परिकल्पना दुनिया के सामने रखी उन्होंने दो बातें स्पष्ट की थी (1) तालीम का माध्यम समग्र समाज के पूर्ण कार्यक्रम हो, जिनका सकार रूप उत्पादन की प्रक्रिया, सामाजिक वातावरण तथा प्राकृतिक वातावरण है। 2—तालीम स्वावलम्बी हो। अगर सम्पूर्ण समाज की गति, शक्ति तथा वृत्ति को अधिष्ठित करना है तो उसकी पद्धति शिक्षण है। यही कारण है कि मैं निरन्तर कहता रहा हूँ कि सर्वोदय की भूमिका में समाज-सेवा शिक्षण का ही कार्यक्रम है और नयी तालीम के सिद्धान्त के अनुसार शिक्षण को अगर सार्वजनिक बनना है तो उसकी प्रक्रिया सार्वजनिक जीवन-संघर्ष के नित्य कर्म के समवाय में ही निकल सकेगी। अगर ऐसा है तो शिक्षक को उसी संघर्ष में शामिल

---

1 श्री धीरेन्द्र मजूमदार, क्रान्ति : प्रयोग और चिन्तन, पृ. 43-44, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, 1971

होकर उसी के समवाय में सेवा कार्य यानि शिक्षण कार्य की प्रक्रिया की खोज करनी होगी ।[1]

इस प्रक्रिया की खोज में श्री पटणकर ने विद्यालय में समवाय पद्धति से शिक्षण की प्रक्रिया चलाने का निर्णय किया । इस प्रक्रिया में छोटे बच्चों के शिक्षण की कल्पना तो मन में थी ही. साथ ही साथ समाज शिक्षण की बात भी थी । इस काम को उन्होंने अपने स्वयं के गांव एवं पड़ोसी नया गांव में प्रारम्भ किया ।

1951 में करज गांव में स्थायी तौर पर आ गये । वैसे गांव से इनका बराबर सम्पर्क तो था ही, लेकिन स्थायी तौर पर यहां आने से गांव वालों ने भी इस काम में उत्साह दिखाया । गांव में इनकी अच्छी खेती थी । जमीन एवं मकान भी था । परन्तु विद्यालय चलाने के लिये जिस प्रकार के साधन एवं सुविधायें चाहियें, वे यहां नहीं थी । उस समय पास-पड़ोस में छोटे बच्चों का कोई विद्यालय भी न था । पाटणकर जी के पास साधन के नाम पर कुछ भी न था । हां, गांव के विद्यार्थी अवश्य विद्यालय में आने की तैयारी रखते थे । मकान एव जमीन के रूप में इनकी स्वयं की जमीन एवं मकान था । शिक्षक ये स्वयं थे । यह संयोग ही कहा जायेगा कि पाटणकर के पिताजी ने गांव से अलग एक मकान बना रखा था । उस मकान के आसपास थोड़ी जमीन भी थी । उन्होंने इस मकान का उपयोग करने का निर्णय किया । इस प्रकार विद्यालय के प्रारम्भिक काल में यह स्थिति बनी की इन्होंने अपनी जमीन एवं मकान पर ही विद्यालय का प्रारम्भ किया । अपने परिवार के तथा अपने गांव के छोटे बच्चों को इस विद्यालय में प्रवेश दिया । प्रारम्भ से ही विद्यालय में शिक्षा के दो रूप रहे । एक,छोटे बच्चों को समग्र नयी तालीम की दृष्टि से शिक्षण देना, और दो, सर्वोदय समाज की दिशा में बढ़ने की दृष्टि से ग्राम स्तर पर समाज परिवर्तन के काम को दिशा देना । इनमें ग्राम सफाई, भू-दान, गौ सेवा, शरीर-श्रम, अस्पृश्यता-निवारण, शराबबन्दी, विचार-शिक्षण आदि कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये ।

प्रारम्भिक दिनों में इस गांव के प्रायः सभी बच्चे इस विद्यालय में आते थे । विद्यालय क्या था, एक बड़ा परिवार था । इस बड़े परिवार में ही बुनियादी तालीम का अभ्यास किया एवं कराया जाता था । विद्यालय, परिवार और गांव तीनों एक सूत्र में बन्धे थे ।

---

1 श्री धीरेन्द्र मजूमदार, वही, पृष्ठ 161-62

सहयोग :

विद्यालय को स्थायित्व मिले तथा इसे व्यापक रूप प्रदान किया जाय इसके लिये आवश्यक था कि विद्यालय के अनुकूल जमीन, मकान, शैक्षणिक साधन एवं शिक्षक हों। ये सुविधायें कोई एक किसान पूरा नहीं कर सकता। उसके पास इतने साधन नहीं होते हैं। इस दृष्टि से विद्यालय के लिये अपनी जमीन एवं अन्य आर्थिक साधन की आवश्यकता महसूस हुई। बैतूल में एक सेवा-निवृत्त अधिकारी श्री जयनारायण हवसर थे। उनकी रुचि गांधी विचार में थी। इनकी इच्छा थी कि गांधी विचार के आधार पर बैतूल में कुछ काम चले। यह भी विचार था कि यह काम शिक्षण का हो तो अच्छा होगा। गांधी विचार से प्रभावित होने के कारण रचनात्मक संस्थानों एव लोगों से भी उनका सम्पर्क था। परन्तु अपने जीवनकाल में वे सर्वोदय विचार से सम्बन्धित कार्य का प्रारम्भ नहीं कर सके। मृत्यु के बाद उनकी पत्नी श्रीमती जयवन्ती देवी हवसर की इच्छा रही कि उनकी इच्छा के अनुसार कार्य किया जाय। श्री जयनारायण हवसर के चाचा स्वामी सच्चिदानन्द थे। उनकी रुचि भी सार्वजनिक कार्यों में थी। अतः स्वामी जी एवं श्रीमती जयवन्ती देवी हवसर दोनों ने गांधी विचार पर आधारित इस विद्यालय की स्थापना में योगदान देना चाहा। पाटणकर जी ने इन लोगों को बुनियादी तालीम से सम्बन्धित हो रहे प्रयोगों को देखने एवं समझने की सलाह दी। इन दोनों व्यक्तियों ने वर्धा, सेवाग्राम जाकर बुनियादी तालीम एवं अन्य रचनात्मक कार्यक्रमों को देखा समझा।

श्री पाटणकर ने अपनी योजना उनके सामने रखी। समग्र नयी तालीम की योजना उन्हें पसन्द आयी। इस काम के लिये उन्होंने धन देने का निर्णय किया। इस प्रकार करजगांव सर्वोदय विद्यालय को आर्थिक दृष्टि से एक आधार मिला। गांव से करीब एक फर्लांग की दूरी पर 4-50 एकड़ जमीन खरीदी गयी। यह जमीन खेती के योग्य नहीं होने के कारण भूमि सुधार का काम प्रथम आवश्यकता बनी। अब विद्यालय को इस नयी जमीन पर लाने का कार्य प्रारम्भ हुआ। मकान भी बने। गांधी हवसर ट्रस्ट का निर्माण किया गया। इस ट्रस्ट तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त आर्थिक सहयोग से इस जमीन पर चार मकान बने। 1. विद्यालय, 2. कार्यकर्ता निवास, 3. उद्योग भवन और 4. गोशाला। विद्यालय का नाम जयनारायण सर्वोदय विद्यालय रखा गया।

मकान बन जाने के बाद 1958 में विद्यालय अपने नये मकान में आ गया और विद्यालय एक स्वतन्त्र संस्था के रूप में काम करने लगा।

2

सामाजिक विरासत

इस क्षेत्र का जंगल एवं पहाड़ियों से घिरे होने के कारण आवागमन की सुविधायें कम थी। बैतूल शहर रेल एवं बस यातायात की दृष्टि से मुख्य मार्ग पर था। परन्तु जिले के अन्य भागों में आवागमन एवं अन्य सुविधाओं का अभाव सा था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा, समाज कल्याण, यातायात की सुविधायें बढ़ी हैं। जिस समय करजगांव में विद्यालय प्रारम्भ किया गया था उस समय वहां की सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति सदियों से चली आ रही व्यवस्था का ही एक रूप था।

दूसरे धन्धे का विकास न होने के कारण गांव के स्त्री-पुरुष सभी खेती में लगते थे। लेकिन साल भर काम नहीं मिलता था। बरसात की फसल ही मुख्य थी। अन्य मौसम में काम प्रायः नहीं रहता था। पास-पड़ोस में आदिवासी क्षेत्र होने के कारण मजदूर पर्याप्त थे। कुछ मजदूर बाहर जाकर भी काम करते थे। कम उत्पादन एवं अन्य धन्धा न होने कारण गरीबी हद दरजे की थी। जिन किसानों के पास ज्यादा जमीन थी उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी।

उपभोग का स्तर बिलकुल सामान्य था। भोजन के प्रकार की दृष्टि से सभी सामाजिक-आर्थिक स्थिति के लोगों का भोजन करीब-करीब समान था। रोटी, दाल, चावल यहां का मुख्य भोजन था। यह आवश्यक नहीं कि रोटी गेहूं की ही हो। गोदी, कुटकी, मक्का, ज्वार, बिर्रा (गेहूँ-चना मिले हुए) आदि की रोटी का प्रचलन भी

खूब था। जिनके पास गाय-भैंस होती वे लोग दूध एवं दूध से बनी चीजों का उपयोग करते थे।

तकनीकी दृष्टि से बिलकुल प्रारम्भिक स्थिति थी। परम्परा से जिस प्रकार की तकनीकी का उपयोग होता आया था उसी से काम करने का उनका अभ्यास बन गया था। पुरानी तकनीक के स्थान पर नयी तकनीक का उपयोग करना न तो वे जानते थे और न ही जानने में रुचि थी।

रोज के जीवन में सफाई का ज्ञान नहीं के बराबर था। सामान्य दिनों में घरों में गन्दगी रहना आम बात थी। हां, खास त्योहारों पर घर की सफाई की परम्परा पुरानी थी। सामूहिक सफाई का अभ्यास नहीं था। इस कारण गांव के रास्तों में कूड़े का ढेर और घर के सामने कचरे का ढेर रहना आम बात थी। गांव के बाहर रास्तों के किनारे शौच जाने से होने वाली गन्दगी किसी को नहीं खटकती थी।

शिक्षा के क्षेत्र में जिज्ञासा नहीं थी। गांव के गिने-चुने परिवारों को छोड़कर शेष को शिक्षा में कोई रुचि नहीं थी। सामान्य किसान तो शिक्षा के महत्त्व को समझता भी नहीं था। इसका एक बड़ा कारण नजदीक में विद्यालय का अभाव था। बाद के वर्षों में जब शिक्षा नौकरी का माध्यम बन गया तो नौकरी प्राप्त करने की आकांक्षा बढ़ा। पारम्परिक जीवन में शिक्षा का खास महत्त्व उस समय नहीं था, क्योंकि सदियों से जीवन का एक बना बनाया ढर्रा चला आ रहा था। उस ढर्रे में परिवर्तन की भूख उन्हें नहीं थी। उनका रोज का जीवन जिस ढंग का था तथा समाज की जो परिस्थिति थी उसमें बिना शिक्षा के उनका काम भली-भांति चल जाता था।

शिक्षा उनके जीवन का अंग नहीं बनी थी। करजगांव एवं नये गांव में मध्यम सामाजिक आर्थिक स्थिति के परिवार रहने के बावजूद शिक्षा का अभाव था। कृषि के कार्य के बाद शिक्षा के लिए समय बचने पर भी वे अपने बच्चों को विद्यालय भेजना कम पसन्द करते थे। इस प्रकार की शैक्षणिक परिस्थिति में विद्यालय प्रारम्भ किया गया। अतः उस समय विद्यालय का सबसे मुख्य कार्य गांव के लोगों की शिक्षा में रुचि पैदा करना था।

सामाजिक रूढ़ियां इस प्रकार की थी जिनमें अनेक अन्धविश्वासों की जड़ें काफी गहरी थी। दवा न लेकर देवी-देवता में विश्वास, बाल-विवाह, भूत-प्रेत की मान्यता की जड़ें गहरी थी। शराब पीने का रिवाज भी खूब था। गांव के करीब 80 प्रतिशत लोग शराब की लत के शिकार थे। गांव में हाथ भट्टियां भी थीं। आदिवासी

क्षेत्र की निकटता के कारण शराब का प्रचलन अपेक्षाकृत अधिक था। इस आदत के कारण आलस्य, आपसी झगड़ा, और प्रेम–भाव का अभाव सहज में पनपता था। सामाजिक सम्बन्धों में निकटता की कमी के कारण किसी प्रकार का सामूहिक कार्य-क्रम चलना संभव नहीं था। हर परिवार व्यक्तिगत स्तर पर समस्याओं से जूझता था। वैसे परम्परागत समाज व्यवस्था में जिस प्रकार की मान्यतायें थी उसमें ग्राम स्तर पर सद्भाव था। गांव के बुजुर्ग का नेतृत्व था। गांव के लोग एक-दूसरे के तीज-त्योहारों में साथ देते थे। विवाह, मृत्यु में सहयोग का वातावरण भी था। इस प्रकार पर-म्परागत व्यवस्था में जिस प्रकार का सद्भाव अन्य गांवों में देखने को मिलता है वह यहां भी था।

3

शिक्षण पद्धति

जैसा गांधीजी ने कहा है, बुनियादी तालीम में व्यक्ति का शारीरिक मानसिक तथा आत्मिक, तीनों का सम्यक विकास होगा। वर्तमान शिक्षा पद्धति में जो कमियां हैं उन्हें दूर करने का प्रयास बुनियादी तालीम में किया गया है। आधुनिक कालेजों की शिक्षा पर जब नजर डालते हैं, तो वहां बुद्धि के विकास के साथ शरीर का कोई मेल नहीं। आज की शिक्षा की जो स्थिति है वह कितनी विकट हो गयी है उसका अंदाज हर व्यक्ति लगा सकता है। शारीरिक श्रम से घृणा आज की शिक्षा पद्धति में निहित है। जो व्यक्ति आज की परम्परागत शिक्षा में उच्च उपाधि प्राप्त करता है वह शारीरिक श्रम करना पसन्द नहीं करता। इसके गिने-चुने अपवाद हो सकते हैं। शिक्षा प्राप्त करने पर 'नौकरी" यही आज की शिक्षा का लक्ष्य हो गया है। स्पष्ट है कि वर्तमान शिक्षापद्धति जीवन के सर्वांगीण विकास के अनुकूल नहीं है और वह शरीर, मन, और आत्मा का सम्यक विकास नहीं करती। गांधीजी ने जीवन के हर पक्ष का विकास हो इस दृष्टि से एक शिक्षा पद्धति हमारे सामने रखी। उन्होंने गर्भ से लेकर मृत्यु तक जीवन की प्रत्येक क्रिया को शिक्षामय करने का प्रयास किया। उन्होंने माना था कि यदि बचपन से बालकों के हृदय की वृत्तियों को ठीक तरह से मोड़ा जाय, तो उनकी बुद्धि का विकास सहज ही होता जाय और नित्य उसकी परीक्षा भी होती जाय।

बुनियादी तालीम में शिक्षक बुनियाद है जिस पर शिक्षा की सफलता की बड़ी जिम्मेदारी है। समवाय पद्धति से शिक्षा देने के लिये आवश्यक है कि शिक्षक का खुला दिमाग हो। इस संबंध में गांधीजी ने कहा—हमें सच्ची जरूरत तो ऐसे शिक्षकों की है,

जिनमें नया-नया सर्जन करने की और विचार करने की शक्ति हो, सच्चा उत्साह और जोश हो और रोज-रोज विद्यार्थी को क्या सिखायेंगें, यह सोचने की शक्ति हो। उसे अपनी निरीक्षण और विचार करने की शक्ति का उपयोग करना है और हस्त उद्योग की मदद से जवान द्वारा वालक को ज्ञान देना है।

इस समवाय पद्धति के बारे में श्री धीरेन्द्र मजूमदार ने बताया है-काम के समय जितना हो सके, उतना बताना चाहिए। फिर बाद में बैठकर शिक्षक प्रसंग को नोट करे और बाद में लोगों से चर्चा कर तथा किताबों से अध्ययन कर उसके लिए नोट तैयार करे। चर्चा के समय उसे बताये। जितना बता सके उतना बताये, बाकी छोड़ दे। ये प्रसग बार-बार आयेगें, तो कई बार में वे पूरे हो जायेंगे। श्रम भारती में बुनियादी तालीम के प्रसग में वे आगे कहते हैं "यहां पर औसत चार घन्टा प्रतिदिन उत्पादन का काम रखा गया है। दो घण्टा विषयों का ज्ञान कराने का रखा गया है। और दो घन्टा अपनी तैयारी करने के लिए। यह दो घन्टे की अपनी तैयारी सबसे सबसे अधिक महत्व की है। दो घन्टे में आधा घन्टा सब लोग एक वर्ग में बैठ कर प्रसंग को नोट करें। फिर ढ़ेढ घन्टा उस प्रसंग से निकाल समवाय ज्ञान का नोट करें ये नोट बच्चों के वर्ग में चर्चा करते समय काम देंगे। तो तीन प्रक्रियायें हुई—

1–काम करते समय जितना सूझे उतना बताना

2–नोट बनाकर वर्ग में विशुद्ध रूप से बतना

3–जितना छूट जाय उसे प्रसंग की पुनरावृत्ति के समय बताना।[1]

सीमायें :—

करजगांव विद्यालय में बुनियादी पद्धत्ति के अनुसार शिक्षा देने का एक प्रयास प्रारम्भ किया गया। काम के साथ शिक्षा दी जाय तथा उसमें पूर्ण समवाय की पद्धति का उपयोग किया जाय इसके लिए आवश्यक है कि उसकी अनुकूलता हो। यह अनुकूलता हर दृष्टि से आवश्यक हैं। पहले तो समाज का वातावरण बुनियादी तालीम के अनुकूल हो। राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा की क्या नीति है इसका भी प्रभाव पड़ता है। यदि सरकार की शिक्षा नीति बुनियादी शिक्षा के अनुकूल नहीं है तो पाठ्यक्रम, मान्यता, शिक्षक आदि की समस्यायें आती हैं। स्थिति यह बनती है कि वर्तमान परि-

---

1 श्री धीरेन्द्र मजूमदार, बुनियादी शिक्षा पद्धति, पृ. 89, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1959।

स्थिति में बुनियादी शिक्षा को व्यावहारिक रूप देना कठिन हो जाता है। इस दिशा में प्रयोग करने वाला विद्यालय अकेला पड़ जाता है। उसे अनेक कायदे-कानून की सीमा में तो रहना ही पड़ता है साथ ही साथ सरकार की नीति की सीमा में भी बंधना पड़ता है।

बुनियादी विद्यालय की कुछ सीमायें स्वीकार करके ही इस पद्धति पर विचार किया जाना चाहिए। ये सीमायें इस प्रकार की है—1 व्यवस्था से समझौता–मौजूद समाज–व्यवस्था में शिक्षा की जो मान्यता है उसे पूर्णरूप से नजरंदाज नहीं किया जा सकता। बुनियादी विद्यालय में शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी को भी वर्तमान समाज के साथ रहना है। अतः बुनियादी शिक्षा पद्धति को मौजूद शिक्षा पद्धति के साथ एक प्रकार का समझौता करना पड़ता है। उसे न चाहते हुये भी वर्तमान समाज की व्यवस्था को स्वीकार करना पड़ता है।

2–सरकारी मान्यता—विद्यार्थियों को आगे पढ़ने की सुविधा मिले इसके लिए परम्परागत शिक्षा पद्धति के समकक्ष मान्यता लेनी पड़ती है। यह इसलिए भी कि बुनियादी विद्यालय में उच्च शिक्षा की व्यवस्था नहीं है। फिर अन्य क्षेत्रों में काम करने के लिए भी सरकारी मान्यता जरूरी है। व्यावहारिक स्थिति यह है कि यदि सरकारी मान्यता न रहे तो विद्यार्थियों की संख्या नगण्य हो जायेगी।

3–पाठ्यक्रम—जब सरकारी मान्यता प्राप्त करते है तो उनके पाठ्यक्रम एवं परीक्षा को भी स्वीकार करना पड़ता है। पाठ्यक्रम एवं परीक्षा को स्वीकार करना सबसे बड़ा बन्धन है, जिससे विद्यालय सरकारी बन्धन में बंधता है। यह मौजूद व्यवस्था के साथ नाजुक समझौता है।

4–दोहरा अभ्यास—इन सारे बन्धनों का परिणाम यह हो जाता है कि विद्यार्थी एवं शिक्षक को दोहरी शिक्षण पद्धति का उपयोग करना पड़ता है। एक ओर तो बुनियादी शिक्षा को स्वीकार करना जिसमें सम्पूर्ण जीवन के समग्र विकास की बात करते हैं और इसके अनुसार समवाय की शिक्षा पद्धति को स्वीकार करते हैं। दूसरी ओर परम्परागत तालीम की मान्यता, पाठ्यक्रम एवं परीक्षा को स्वीकार करते हैं। इस स्थिति में विद्यार्थी को परम्परागत पाठ्यक्रम के अनुसार,सरकार द्वारा मान्य परीक्षा की तैयारी करनी पड़ती है। इसका परिणाम यह होता है कि बुनियादी शिक्षा पद्धति की पूर्णता समाप्त हो जाती। शिक्षा का बड़ा भाग परीक्षा की तैयारी करने में लगता है। शिक्षक को भी परम्परागत पाठ्यक्रम को पूरा करने पर ज्यादा जोर देना पड़ता है।

5–शिक्षक—आज की जो स्थिति है उसमें बुनियादी तालीम के अनुकूल शिक्षक

नहीं मिल पाते हैं। इस प्रकार के शिक्षकों के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था नहीं है। फल स्वरूप सुन्दर समवाय का अभाव हो जाता है।

स्वरूप:—

उपरोक्त सीमाओं को स्वीकार करते हुए करजगांव विद्यालय में बुनियादी शिक्षा को दिशा देने का प्रयास किया जाता रहा है। इस विद्यालय में बुनियादी शिक्षा को इस रूप में स्वीकार किया गया है।

1—शिक्षा में श्रम को पूरा स्थान दिया गया है। इस दृष्टि से प्रतिदिन उत्पादक श्रम का नियम है।

2—बौद्धिक एवं शारीरिक श्रम को समान महत्व देने की दृष्टि से सभी प्रकार के श्रम को समान प्रतिष्ठा दी जाती है। टट्टी-सफाई, सामान्य सफाई, कृषि, उद्योग हर प्रकार का काम विद्यार्थी एवं शिक्षक साथ-साथ करते है।

3—समवाय पद्धति की दृष्टि से शारीरिक श्रम से संबंधित सभी कार्यों के साथ समवाय का उपयोग किया जाता है। काम के साथ ज्ञान दिया जाता है।

4—परम्परागत शिक्षा पद्धति का पाठ्यक्रम स्वीकार किया गया है। इसके अनुसार उनकी पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं तथा परीक्षा भी सरकारी नियमानुसार होती है।

5—यह भी स्वीकार किया गया है कि विद्यालय में जो भी बताया जाता है, जो संस्कार दिया जाता है, विद्यार्थी उसे जीवन में उतारें। विद्यालय से जो भी सीखते हैं उसके बारे में वे अपने अभिभावकों को बतायें। विद्यालय के बड़े विद्यार्थी घर पर जाकर घर के काम में मदद करे।

समवाय :—

विद्यार्थी जिस समय विद्यालय में आते हैं उसी समय से उनका शिक्षण प्रारम्भ हो जाता है। विद्यालय में आने के बाद उनका पहला काम सफाई का होता है। सफाई के दो पक्ष माने गये हैं :—एक व्यक्तिगत सफाई और दूसरा सामूहिक सफाई। प्रत्येक विद्यार्थी व्यक्तिगत दृष्टि से साफ रहे इसके लिये उन्हें प्रेरित किया जाता है। व्यक्तिगत सफाई का महत्व बताते समय स्वास्थ् के बारे में जानकारी दी जाती है। सामूहिक सफाई की दृष्टि से विद्यालय की सफाई रोज के कार्यक्रम का अंग है। समय-समय पर ग्रामसफाई का कार्यक्रम भी रखा जाता है।

शारीरिक श्रम यहां की शिक्षा का प्रमुख अंग है। श्रम के रूप में मुख्यतः कृषि एवं पशु पालन से संबंधित कार्य किया जाता है। जिस मौसम में जिस प्रकार

की फसल लगायी जाती है उसकी खेती, विज्ञान एंव तकनीक के बारे में विस्तृत जान• कारी दी जाती है। पशुपालन कृषि के साथ जुड़ा है। यहां कम्पोस्ट एंव गोबर गैस की अच्छी व्यवस्था है। कम्पोस्ट का ज्ञान कृषि के लिये काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है। प्रतिदिन प्राय: डेढ़–दो घंटे उत्पादक श्रम होता है। इस बीच विद्यार्थी को पर्याप्त ज्ञान देने का प्रयास किया जाता है। शारीरिक श्रम के साथ-साथ बौद्धिक ज्ञान देने का सुन्दर नमूना यहां देखा जा सकता है। काम करते समय विद्यार्थी को जो शंका मन में उठती है उसका समाधान करने का प्रयास किया जाता है।

नाश्ते के वाद का समय वौद्धिक वर्ग का है। जो कार्य किया जाता है उस पर वौद्धिक चर्चा इस समय की जाती है। शिक्षक श्रम करते समय उठे प्रश्नों का समाधान इस समय करते हैं। समवाय पाठ तैयारी के आधार पर भी विद्यार्थियों को ज्ञान दिया जाता है।

दोपहर वाद 2 से 5 वजे तक वौद्धिक वर्ग का दूसरा क्रम चलता है। इस समय परम्परागत विद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले पाठ्यक्रम को पूरी करना आवश्यक होता है। सामान्य पाठ्यक्रम में भी भरसक समवाय पद्धति द्वारा ज्ञान देने का प्रयास किया जाता है। विद्यार्थियों से चर्चा के वाद ऐसी जानकारी मिली की अन्य विद्यालय के विद्यर्थियों की अपेक्षा यहां के विद्यार्थी विषय को अधिक अच्छी तरह समझते हैं।

वर्तमान शिक्षा की परिस्थिति को देखते हुये यहां पूर्ण समवाय पद्धति का उपयोग नहीं किया जा सका है। सीमित समवाय के कई कारण देखने में आये, जैसे (1) सरकारी पांठ्यक्रम एंव परीक्षा स्वीकार करने के कारण पुस्तकें पूरी करने की चिंता रहती है, क्योंकि परीक्षा उसी पठ्यक्रम के आधार पर होती है। (2) पाठ्यक्रम एंव परीक्षा का वन्धन स्वीकार करने के कारण व्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप हो जाता है। इससे विद्यार्थी एंव शिक्षक दोनों पर दोहरा भार पड़ता है। (3) योग्य एंव निष्ठावान शिक्षकों का अभाव होने के कारण समवाय की पूरी तैयारी नहीं हो पाती है। (4) कार्य एंव उद्योग की विविधता भी समवाय के लिये आवश्यक है जो कि यहां सभवं नहीं हो सका।

4

विद्यालय, शिक्षक और विद्यार्थी

विद्यालय स्वावलम्बन—

विद्यालय, शिक्षक और विद्यार्थी तीनों शिक्षण सस्था का आधार है। विद्यालय भौतिक रूप में जिस भी रूप में हो उसमें प्राण फूंकने का काम शिक्षक एवं विद्यार्थी करते हैं। बुनियादी तालीम में विद्यालय के स्वावलम्बन पर काफी जोर दिया गया है। माना यह गया कि विद्यालय क्रमशः स्वावलम्बी होता जायगा। स्वावलम्बन की बात स्पष्ट करते हुए गांधीजी ने कहा है—मैं तो बच्चे की शिक्षा का प्रारम्भ उसे कोई उपयोगी दस्तकारी सिखाकर अर्थात जिस क्षण से उसकी शिक्षा शुरू होती है उसी क्षण से उसे कुछ न कुछ नया सृजन करना सिखा कर ही शुरू करूंगा। इस तरीके से हर एक पाठशाला स्वावलम्बी बन सकती है। शर्त सिर्फ यह है कि इन पाठशालाओं में तैयार होने वाले माल को सरकार खरीद लिया करे।[1]

गांधीजी के शब्दों में—स्वावलम्बन मेरे लिये नयी तालीम की पहली शर्त नहीं बल्कि उसकी सच्ची कसौटी है।[2] इस कसौटी पर उतरने के लिए विद्यालय सतत प्रयास करता रहेगा। कौन विद्यालय कितना स्वालम्बन साध सका है यह तो परिस्थिति पर निर्भर करता है। यहां यह माना गया है कि विद्यालय में जब स्वावलम्बन की शिक्षा मिलेगी तो विद्यार्थी जीवन में स्वावलम्बन साध सकेगा। वह शिक्षा प्राप्त करने के बाद नौकरी की तलाश में भटकेगा नहीं बल्कि उसने जो भी सीखा है उसके अनुसार अपना आर्थिक आधार स्वंय बनायेगा।

1–गांधीजी, हरिजन 31 जुलाई, 1937
2–गांधीजी, बुनियादी शिक्षा, पृ. 150

विद्यालय में स्वावलम्बन सधे इसके लिये आवश्यक है कि विद्यालय के पास पर्याप्त आर्थिक साधन हो तथा औद्योगिक शिक्षा की पूरी व्यवस्था हो। कृषि को मुख्य स्थान मानने पर खेती की पर्याप्त जमीन होने के साथ वैज्ञानिक खेती की भी व्यवस्था जरूरी है। कृषि यहां के जीवन का आधार है, इस कारण भी इसका अपना महत्व है कृषि के साथ पशुपालन अविभाज्य रूप से जुड़ा है। दोनों परस्पर पूरक भी है। इस विद्यालय में कृषि और पशुपालन साथ-साथ चलता है। लेकिन जब हम विद्यालय के स्वावलम्बन की बात करते हैं तो अन्य उद्योगों का भी महत्व बढ़ जाता है। मात्र कृषि से जीवन की सारी आवश्यकतायें पूरी नहीं होती। व्यक्ति एवं समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक है कि अन्य उद्योगों की शिक्षा की व्यवस्था हो।

सर्वेक्षित विद्यालय के संबंध में हम इतना कहना चाहेंगे कि कृषि-पशुपालन के अतिरिक्त अन्य ऐसी प्रवृत्तियां यहां नहीं चल सकी जो विद्यालय या विद्यार्थी के स्वावलम्बन में सहायक हो सके। इस कारण स्वावलम्बन की दृष्टि से मात्र कृषि की आय ही देखने को मिली। इसका सहज परिणाम यह हुआ कि विद्यालय के स्वावलम्बन का लक्ष्य काफी दूर रह गया। यहाँ कृषि ही क्यों हाथ में लिया जा सका, इसके कुछ कारणों का उल्लेख किया जा सकता है। मुख्य कारण है—
(1) अन्य उद्योगों के प्रशिक्षण की व्यवस्था के लिए विद्यालय के पास साधन नहीं है। (2) यदि जैसे-तैसे व्यवस्था की भी गयी तो उस उद्योग का भविष्य अच्छा नहीं दिखा क्योंकि सीखने के बाद उसका उपयोग नहीं होता। (3) समाज का वातावरण तथा मौजूद व्यवस्था उसके अनुकूल नहीं है। (4) उत्पादित सामान का बाजार नहीं है।

विद्यालय के स्वावलम्बन में शिक्षक का स्वावलम्बन भी निहित है। विद्यालय की वर्तमान परिस्थिति में शिक्षक पर व्यय ही सर्वाधिक है। यदि विद्यालय के उत्पादन से शिक्षक का स्वावलम्बन सधता है तो यह एक बड़ी सफलता है। लेकिन यह सब तभी संभव है जबकि साधन-सुविधा के साथ-साथ शिक्षक भी निष्ठावान हो।

यहाँ शिक्षक एवं विद्यार्थी दोनों समान स्तर पर काम करते हैं जिससे विद्यार्थी के मन में मानसिक दृष्टि से भेद-भाव विकसित नहीं होता है। शिक्षक विद्यार्थी के प्रत्येक कार्य के साथ होता है इस कारण वह उसकी रुचि, गुण-दोष सबसे परिचित होता है। विद्यार्थी में छिपे ज्ञान को सामने लाने में शिक्षक हमेशा मददगार होता है। विद्यार्थी को जिस काम में रुचि है वही काम सीखने का अवसर उसे मिले इसके लिए भी विद्यार्थी को शिक्षक का साहचर्य आवश्यक है। श्री दिलखुश दीवान ने गांधीजी को लिखे एक पत्र में लिखा है, शिक्षक का सहज्ञान उद्योग शिक्षा का निपुण अनिवार्य

साधन है। शिक्षक के हृदय में विद्यार्थी के लिये प्रेम और उत्साह भरा हुआ होगा, तो यह सहवास बहुत सरल, रसपूर्ण और परस्पर विकास का साधन हो जायेगा। ऐसे शिक्षक विद्यार्थी के साथ निरन्तर विद्यार्थी भी बना रहता है। शिक्षक सदा विद्यार्थी बना रहे तभी समवाय बनता है।

स्वावलम्बन की स्थिति—

विद्यालय स्थापना के समय से ही सार्वजनिक संस्थाओं, व्यक्तियों एवं सरकार से संस्था को समय-समय पर आर्थिक सहयोग मिलता रहा है। विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत जो आर्थिक मदद मिली उससे विद्यालय को आर्थिक आधार मिला। स्थापना वर्ष 1954 से लेकर 1974 तक विभिन्न माध्यमों से जो आय हुई तथा उसका जिन मदों में व्यय हुआ उसे इस सारणी में देख सकते हैं।

सारणी संख्या–13

अप्रेल 1954 से मार्च, 1974 तक का आय-व्यय

आय		व्यय	
मध्य प्रदेश गांधी स्मारक निधि	1,06,507–21	कार्यकर्त्ता वेतन–	111209–81
विदेशी मित्रों तथा सरकार से		चल-अचल सम्पत्ति–	63368·11
विदेशी मित्रों से–45206–30			
म. प्र. शासन से–23399·00	68,605–30		
गांधी हृवसर ट्रस्ट, बैतूल-	54,696–32	चालू खर्च	20790-29
		बालकों का नाश्ता-	15383–67
		गोपालन	12964-49
सर्व-सेवा-संघ,	5121–00	ग्रामोद्योग	9421–15
व्यक्तिगत	3053–37		
ग. उ. पाटणकर	2100–00		
अन्य आय	689–76	सर्वोदय आन्दोलन के लिए	7880–54
पेशगी (वापिस करना है)	4353–40	अनाज, अमानत	1868-69
		बैंकबैलेन्स रोकड़	2239·61
	2,45,126–36		2,45,126–36

उद्योग शिक्षण की अच्छी व्यवस्था न होने तथा प्रारम्भ में कृषि की भी सुविधा न होने के कारण स्वावलम्बन की दिशा में गति काफी धीमी रही। विद्यालय के विद्यार्थी एवं शिक्षकों के प्रयास से जो उत्पादन हुआ उसे नीचे की तालिका में देखा जा सकता है।

सारणी संख्या–14

विद्यालय में कृषि से आय

वर्ष		उत्पादन (रुपये में)
1954–55	–	3–00
1959–60	–	230–00
1964–65	–	1245–00
1967–66	–	1950–00
1969–70	–	3008–00
1970–71	–	2341–00
1671–72	–	2034–00

प्रारम्भिक वर्षों में कृषि-उत्पादन पूर्ण रूप से वर्षा पर निर्भर था। बाद में सिंचाई की सुविधा होने पर उत्पादन बढ़ा। यहां सामान्यत: छोटे बच्चे हैं। इन बच्चों की कार्यक्षमता एवं कार्यकुशलता भी सीमित है। प्रयास यह रहता है कि शिक्षक एव विद्यार्थी मिल कर ही कृषि की पूरी क्रियायें करें।

विद्यालय के आर्थिक साधन, शिक्षक की योग्यता एव निष्ठा, विद्यार्थियों की कार्यक्षमता आदि को देखते हुए विद्यालय स्वावलम्बन की दिशा में बढ़ने के लिए पहला लक्ष्य यह माना गया कि विद्यार्थियों को अपने श्रम से उत्पादित वस्तुओं का नाश्ता मिले। अतः उत्पादित वस्तुओं का उपयोग विद्यार्थियों एवं शिक्षक के नाश्ते के रूप में प्रथम प्राथमिकता के रूप मे किया गया है। यदि नाश्ते के बाद भी बचत होती है तो वह शिक्षकों के स्वावलम्बन में जुड़ता है। यह माना गया कि विद्यार्थियों को यह महसूस हो कि वे जो उत्पादन करते है उसका लाभ उन्हें मिलता है। इससे उनके मन में विश्वास जगता है कि हम अपने खाने के लिए स्वयं पैदा कर सकते हैं, फिर कार्य में रुचि बढ़ना स्वाभाविक है। नाश्ते का स्वावलम्बन तथे इस प्रयास मे जो सफलता मिली है उसे नीचे की तालिका मे देखा जा सकता है।

सारणी संख्या–15

नाश्ते में स्वावलम्बन की स्थिति

(रुपयों में)

वर्ष	कृषि आय से पूर्ति	बाहरी स्रोत से पूर्ति	कुल
1954–55	–	–	–
1959–60	230–00	1194–00	1424–00
1964–65	1245–00	375–00	1620–09
1967–68	1950–00	2518–00	4468–00
1969–70	1838–00	–	1838–00
1970–71	1452–00	–	1452–00
1971–72	1816–00	–	1816–00

यदि कुल उत्पादन में से नाश्ते में स्वावलम्बन के बाद बचत देखना चाहे तो तीन वर्षों–1969–70,70–71 और 1971–72 में क्रमश: 1170, 889,219 रुपये की बचत हुई है। इसे शिक्षकों का स्वावलम्बन माना जा सकता है। यदि स्वावलम्बन की दृष्टि से विचार करें तो यही कहना पड़ेगा कि विद्यार्थियों के नाश्ते मे विद्यालय पूर्ण स्वावलम्बी है। शिक्षकों के स्वावलम्बन में आंशिक सफलता मिली है।

शिक्षक—

विद्यालय में स्थायी रूप से लम्बी अवधि तक काम करने वाले शिक्षकों की संख्या काफी कम है। ज्यादातर शिक्षक अल्प अवधि तक ही विद्यालय में रहे। शिक्षकों की सेवा–अवधि की दृष्टि से उन्हें नीचे लिखे वर्गों में विभाजित कर सकते हैं।

विद्यालय में कुल 30 शिक्षक आये-गये। कुछ शिक्षक तो मात्र कुछ महिनों ही रहे। कुछ केवल अनुभव प्राप्त करने एवं देखने समझने की दृष्टि से आये। शिक्षकों के स्थायित्व का विद्यालय एवं विद्यार्थी दोनों पर प्रभाव पड़ता है। यदि शिक्षक स्थायी रूप से कुछ वर्षों तक कार्य करता तो उसका विद्यार्थी एवं समाज दोनों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। फिर इससे शिक्षक का भी अनुभव बढ़ता है। शिक्षकों का स्थायित्व क्यों नहीं रहता, इसके कारणों की तलाश में ये कारण देखने को मिले।

1–यहां आर्थिक दृष्टि से कम लाभ है। अन्यत्र अधिक वेतन मिलता है।

सारिणि संख्या–16

शिक्षक सेवा काल

कितने वर्षों तक कार्य किया (वर्ष)	शिक्षकों की संख्या
13	1
6	1
4	5
3	3
2	7
1	5
1 वर्ष से कम	8
कुल संख्या	30

2–दूसरी संस्थाओं में अधिक प्रतिष्ठा एवं जिम्मेदारी का काम मिला, इस कारण दूसरा कार्य स्वीकार कर लिया।

3–घर की परिस्थितियां अनुकूल न होने के कारण चले गये।

4–इस काम में रुचि एवं निष्ठा नहीं।

यहां से जो शिक्षक बाहर गये और वे जिन कार्यों में लगे उसे इस सारणी में देख सकते हैं—

सारणि संख्या–17

विद्यालय छोड़ कर जाने के बाद शिक्षक

जिस काम में लगे	संख्या
शिक्षण कार्य	9
रचनात्मक संस्थायें	4
घर की खेती	3
व्यापार	3
अन्य नौकरी	3
फुटकर	2
पारिवारिक कार्य	4 महिलायें
कुल–	28

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि ज्यादा शिक्षक यहां से शिक्षा के क्षेत्र में गये। कुछ महिलायें भी यहां शिक्षिका थीं जो कि शादी के बाद पारिवारिक कार्यों में लगी हैं। दो शिक्षक पुनः विद्यालय में आ गये। ये दोनों शिक्षक बीच में विद्यालय छोड़कर अन्य कार्य में लग गये थे।

वर्तमान एवं भूतपूर्व शिक्षकों से बातचीत के दौरान यह बात स्पष्ट हुई कि यहां जिन लोगों ने काम किया उनमें आत्म विश्वास बढ़ा और अन्यत्र जहां भी गये वहां अच्छा विकास किया। विद्यालय में उन्हें प्रत्येक कार्य को निष्ठा पूर्वक करने की प्रेरणा मिली, साथ ही साथ सेवा की भावना भी आयी। विद्यालय में हर प्रकार के कार्य का अनुभव होता है, अतः जो ज्ञान उन्हें यहां मिला वह आगे के विकास में मददगार हुआ। जो व्यक्ति जिस क्षेत्र में भी गया उसे अच्छी सफलता मिली। कुछ लोग खेती के काम में लगे तो उन्हें विद्यालय की वैज्ञानिक खेती का लाभ मिला। कुछ लोग रचनात्मक संस्थाओं में गये तो वहां उन्हें यहां के अनुभव ने अच्छा मार्गदर्शन किया। इस प्रकार शिक्षकों को नयी दृष्टि मिली।

विद्यालय, शिक्षक और विद्यार्थी तीनों का समन्वय सधे और विद्यालय समग्र शिक्षा का केन्द्र बने इस दृष्टि से करजगांव विद्यालय ने कुछ प्रयास किये, इस प्रयास को एक क्रम से इस रूप में गिना सकते हैं।

1–शिक्षा स्वावलम्बी हो और इस दृष्टि से विद्यालय के पास कृषि एवं उद्योग के शिक्षण की व्यवस्था की गई। कतिपय कारणों से अन्य उद्योग नहीं चलाये जा सके।

2–विद्यालय स्वावलम्बन की दृष्टि से शिक्षक एवं विद्यार्थियों के श्रम से नाश्ते में पूर्ण स्वावलम्बन तथा शिक्षकों का आंशिक स्वालम्बन सध सका है।

3–विद्यालय, शिक्षक एवं विद्यार्थी समग्र शिक्षण की ओर बढ़ें, इस दृष्टि से समवाय शिक्षण पद्धति को अपनाया गया है और इसका मुख्य माध्यम कृषि, पशुपालन तथा उससे संबंधित कार्य है।

5

विद्यालय का सामाजिक प्रभाव

विद्यालय द्वारा जो कार्य ग्रामस्तर पर किये गये तथा विद्यालय में जो प्रवृत्तियां चलीं उनका प्रभाव ग्रामीण जीवन पर देखा जा सकता है। इस प्रभाव को मोटे तौर पर इस रूप में गिना सकते हैं :—

शराबबंदी-1954 के पूर्व, जबकि विद्यालय की स्थापना नहीं हुई थी, करज गांव तथा पास-पड़ोस के गांवों में शराब का प्रचलन खूब था। करीब 50 प्रतिशत परिवार के लोग शराब पीते थे। सांवगा, नयेगांव और करजगांव तीनों पास-पास है। इनमे सांवगा में शराब का प्रचलन खूब था। इस गांव में शराब की कई भट्टियां थी। लोग स्वंय के उपयोग तथा बेचने के लिये शराब निकालते थे।

विद्यालय के लिये इस प्रकार का वातावरण प्रतिकूल था घोर भाष था कि यदि शराब चलती रही तो किसी भी विचार का जड़ पकड़ना संभव नहीं। इस स्थिति में बच्चों में अच्छा संस्कार डालना तो संभव नहीं ही था, साथ ही साथ उत्पादन वृद्धि एंव समाज सुधार के कार्यक्रम भी अधूरे रहेंगे। गांव में ऐसे लोग भी थे जो आदतन शराबी हो चुके थे। कुछ जान-बूझ कर भी शराब नहीं छोड़ना चाहते थे। गांव में कुछ ऐसे लोग भी थे जो शराब छोड़ने के लिये लोगों को प्रेरित किया करते थे। शराब की बुराइयों को बताते तथा उसे छोड़ने के लिये प्रोत्साहित करते रहते थे। इस प्रकार करजगांव एंव नयेगांव में ऐसे लोगों का एक समूह बन गया था जो शराब छुड़ाने का प्रयास बराबर करता रहता था। यह समूह बाद में सांवगा मे भी बना।

1954 का 2 अक्टूबर शराबबंदी कार्यक्रम के लिये उल्लेखनीय दिन है। इस दिन करजगांव में गांधीजी के जीवन पर एक नाटक खेला गया। इस नाटक में गांव के युवकों ने भाग लिया। इस नाटक को देखने के लिये करजगांव एंव पास-पड़ोस के गांव के लोग भी आये। अन्त में शराबबंदी की बात कही गयी। इस बात का संकल्प लेने की बात आयी कि आज से शराब पीना छोड़ेगें तथा अन्य लोगों को शराब छोड़ने के लिये तैयार करेगें। शराब का व्यापार करने वाले उसका धन्धा भी नहीं करेगें। इस संकल्प की शुरुआत अच्छी हुई। गांव के मुख्य लोगों ने पहले संकल्प लिया।

संकल्प के बाद शराबबंदी कार्यक्रम को गति मिली। इसके पक्ष में वातावरण बना, गांव के लोगों ने इस काम में रुचि लेना प्रारम्भ किया। विद्यालय के लिये यह लोक-शिक्षण का कार्यक्रम हो गया। विद्यालय के शिक्षकों ने इस काम को प्राथमिकता दी। विद्यालय के शिक्षक विद्यार्थी एंव गांव के लोगों ने मिलकर तीनों गांवों में शराब बंदी का काम आगे बढ़ाया।

शराब बंदी का ग्रामीण जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में चर्चा करने पर जो तथ्य सामने आये उन्हें इस क्रम में रख सकते हैं:—

1. गांव के वातावरण में शान्ति आयी।
2. परिवार के आपसी संबंधों में मधुरता आयी।
3. बच्चों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। पहले गाली-गलोंज तथा घर एंव गांव के बुरे-वातावरण का उनके मन पर गलत प्रभाव पड़ता था।
4. शराब पर व्यय बन्द हुआ इससे परिवार की आर्थिक स्थिति सुधरी।
5. गांव के आपसी संबंधों में सुधार आया। इसके साथ-साथ गांव में स्वयं की समस्याओं को समझने की शक्ति बढ़ी।

अस्पृश्यता निवारण :—

विद्यालय में कुनबी एंव पंवार जाति के विद्यार्थी अधिक हैं। इनमें कुनबी जाति को अन्य की अपेक्षा उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त है। सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से पंवार जाति का दूसरा स्थान है। हरिजन एंव आदिवासी अछूत जातियां मानी जाती है। लेकिन कुनबी एवं पंवार में भी यह भेद है। विद्यालय प्रारम्भ होने का समय ऐसा था कि कुनबी एवं पंवार भी एक दूसरे से अलग-अलग थे, हालांकि दोनों अपने को सवर्ण मानते हैं। कुओं पर पानी भरना, मन्दिर, भोज-भात आदि में छुआ छूत मानते थे। हरिजन एंव आदिवासी तो अस्पृश्य माने ही जाते थे विद्यालय

स्पृश्यता की भावन को हटाने का प्रयास करता है। जातिगत भेद समाप्त करने में गांव का प्रगतिशील समुदाय भी सतत प्रयत्नशील रहा है। इस प्रकार विद्यालय ने यह भेद-भाव समाप्त करने में मदद की।

प्रौढ़ शिक्षा :—

प्रौढ़ शिक्षा के दो अंग माने जा सकते हैं। (1) अक्षर ज्ञान (2) विचार शिक्षण। किसी विचार को पढ़कर समझने तथा उसे व्यक्त करने-लिख या बोलकर व्यक्त करने के लिये अक्षर ज्ञान आवश्यक है। रोज के जीवन में भी साक्षरता जरूरी है। इस दृष्टि से विद्यालय के शिक्षकों द्वारा अक्षर ज्ञान देने का कार्यक्रम चलता रहा। पर यह कार्य नियमित नहीं चला। विद्यालय की परिस्थिति एवं शिक्षकों की अनुकूलता को देखते हुये यह कार्यक्रम समय-समय पर चलता रहा है। प्रौढ़ शिक्षा का दूसरा पक्ष विचार शिक्षण का है। विचार शिक्षण पर ज्यादा जोर दिया जाता रहा है। इस दृष्टि से कई कदम उठाये गये, जैसे—

1—रात्रि में शिक्षक गांव में जाकर खास विषय पर गांव वालों के साथ विचार-विनिमय करते हैं। सामयिक समस्याओं पर भी विचार विनिमय होता रहता है।

2—सर्वोदय विचार से सम्बन्धित कार्यक्रम भी चलते रहते है। जैसे—1—संत तुकड़ोजी महाराज के द्वारा विद्यालय का उद्घाटन। तुकड़ोजी महाराज के भजनों का कार्यक्रम 2-3 बार हुआ। 2—प्रान्तीय भूदान-सम्मेलन सन् 54 के दिसम्बर मास में हुआ था। प्रान्त और देश के प्रमुख और वरिष्ठ कार्यकर्ता उपस्थित हुये थे। ऐसे ही शिविर-सम्मेलन प्रतिवर्ष होते रहे हैं। 3—विनोबाजी की पद यात्रा 4—भूदान प्राप्ति एवं वितरण का कार्यक्रम 5—ग्राम स्वराज्य पद यात्रा 6—श्रीदादाभाई नाइक की पद-यात्रा।

3-विद्यालय में भी समय-समय पर विचार गोष्ठी एवं सभायें होती रहती है। एक वार प्रान्तीय स्तर का भी सम्मेलन हुआ था जिसमें श्रीजयप्रकाश नारायण, दादा धर्माधिकारी एवं अन्य लोग आये। इस सम्मेलन की व्यवस्था गांव के लोगों ने की। इस प्रकार के कार्यक्रम लोक शिक्षण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस गांव के कुछ लोग अवसर अखिल भारतीय सर्वोदय सम्मेलनों में भी जाते रहे हैं।

4—सांस्कृतिक कार्यक्रमों द्वारा भी प्रौढ़ शिक्षा को गति प्रदान करने का प्रयास किया जाता है।

6

आर्थिक-प्रभाव

विद्यालय के कार्यों का ग्रामीण जीवन पर पड़ने वाले आर्थिक प्रभाव को तीन रूपों में देख सकते हैं :—

1–करजगांव एवं नये गांव के आर्थिक जीवन पर प्रभाव । 2–विद्यालय में शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी एवं उसके परिवार पर आर्थिक प्रभाव । 3 –पास-पड़ोस के गांव के जीवन पर पड़ने वाला सामान्य आर्थिक प्रभाव । विद्यालय एक शिक्षण संस्था के रूप में कार्य करता है । यहां की प्रवृत्तियां शिक्षा से संबंधित हैं । आर्थिक विकास का स्वतंत्र कार्यक्रम विद्यालय की ओर से नहीं चलता है । आर्थिक विकास के कार्यों में सिचाई-साधन, व्यापार आदि की दृष्टि से कितना धन व्यय किया गया तथा क्या क्या योजनायें चली यह देखने का प्रयास किया जाता है । परन्तु यहां शुरू में ही यह स्पष्ट कर देना चाहते कि विद्यालय की ओर से इस प्रकार का कोई कार्यक्रम हाथ में नहीं लिया गया । कृषि या अन्य कार्यों में निर्माण की दृष्टि से कोई कार्यक्रम नहीं चला तथा धन भी व्यय नहीं किया गया । हां, गांव के लोगों ने स्वयं की प्रेरणा से या विद्यालय की प्रेरणा से व्यक्तिगत या सामूहिक स्तर पर निर्माण कार्य अवश्य किया । आर्थिक विकास के कार्य में विद्यालय का रूख लोक-शिक्षण का है । विद्यालय से उन्हें कार्य की प्रेरणा मिलती है और स्वयं की शक्ति से जो कुछ कर सकते हैं करते हैं । विद्यालय एवं गांव का जो संबंध है उसके कारण विद्यालय के कार्यों का, जिसमें आर्थिक कार्य भी शामिल है, प्रभाव गांव पर पड़ता है ।

ग्रामीण जीवन पर आर्थिक प्रभाव जिस रूप में पड़ा है उसे निम्नलिखित प्रकार के कार्यों का प्रभाव माना जाना चाहिये :—

1–विद्यालय के कृषि के क्षेत्र में उन्नत पद्धति का उपयोग किया जाता है जिसका अनुसरण गांव वाले भी करते हैं।

2–विद्यालय में उत्तम किस्म के बीज का उपयोग किया जाता है तथा उचित मूल्य पर गांव वालों को दिया जाता है।

3–पशुओं की अच्छी देखभाल की प्रेरणा विद्यालय से प्राप्त होती है।

4–विद्यालय के शिक्षक समय-समय पर अच्छी खेती के बारे में जानकारी देते रहते हैं। यदि गांव वाले किसी प्रकार की सलाह मशविरा चाहते हैं तो यह भी उन्हें प्राप्त होती हैं।

5–जो विद्यार्थी विद्यालय में पढ़ते हैं वे अच्छी खेती करना सीखते और घर पर जाकर अच्छी खेती करने में सफल होते हैं।

नीचे लिखी बातें गांव के लोगों ने सीखी और इस कारण पूरे गांव का आर्थिक विकास हुआ :—

अ–कम्पोस्ट तथा अन्य उर्वरकों का उपयोग–गांव के किसानों को आर्थिक लाभ जिन चीजों के उपयोग से हुआ है उनमें कम्पोस्ट का प्रमुख स्थान है। विद्यालय के माध्यम से यहां के लोगों ने कम्पोस्ट बनाना सीखा। आज प्रायः प्रत्येक घर में खाद का गड्ढा है। कुछ लोग विधिवत् वैज्ञानिक खाद तैयार करते हैं तो कुछ लोग सामान्य ढंग से कम्पोस्ट तैयार करते हैं। बेकार चीज को भी किस प्रकार उपयोगी बनाया जा सकता है इसका सुन्दर नमूना कम्पोस्ट है। एक समय था जबकि गांव में कूड़ा-करकट बिखरा रहता था। कम्पोस्ट के काम आने वाली बहुत सारी चीजें बेकार पड़ी रहती थी। आज स्थिति यह है कि लोग अपने साधनों से तो कम्पोस्ट तैयार करते ही हैं साथ ही साथ पास-पड़ोस से भी कचरा जमाकर कम्पोस्ट बनाते हैं। कुछ लोग तो जंगल से भी गोबर व पत्तियों को जमाकर कम्पोस्ट बनाते हैं। कम्पोस्ट खरीदना भी चाहते हैं। इसके साथ रासायनिक खाद का भी उपयोग बढ़ा है। वैसे विद्यालय इस बात में विश्वास करता है कि खेती में रासायनिक खाद हानिकारक है अतः इसका उपयोग नहीं किया जाना चाहिये। परन्तु आज रासायनिक खाद के प्रयोग की जो हवा चली है उससे बचना गांव वालों के लिए सम्भव नहीं रहा। फिर भी यहां के लोग रासायनिक खाद की सीमा को स्वीकार करते हैं।

ब–भूमि सुधार—भूमि सुधार के दो प्रकार के कार्य किये गये हैं : एक, भूमि को समतल कर खेती योग्य बनाना और दो, मेड़बन्दी करना।

स-विद्यालय में कृषि संबंधी प्रयोग बराबर किये जाते रहे हैं। परम्परा से इस क्षेत्र में जो फसलें उगायी जाती हैं उसके अलावा कौनसी फसल उगायी जा सकती है इसका प्रयोग विद्यालय में किया जाता है। इस क्षेत्र में गेहूं की अच्छी पैदावार हो सकती है यह विद्यालय से ही जानकारी मिली। लोगों ने अन्न के अतिरिक्त गन्ना, अमरूद, केला, सोयाबीन, आदि उगाना सीखा। सब्जी के बारे में गांव वालों ने जो सीखा वह तो अनुकरणीय है।

द-अच्छा बीज–अधिक उत्पादन के लिए उत्तम किस्म का बीज आवश्यक है। इस बात को समझ लेने के बाद किसान उसकी तलाश में रहता है। अच्छा बीज प्राप्त होना एक समस्या है। इस समस्या का समाधान एक सीमा तक,विद्यालय से होता है। बीज संबंधी दो प्रकार की कठिनाइयां हैं। एक, अच्छा बीज प्राप्त हो ताकि फसल अच्छी हो। दो, अधिक उत्पादन देने वाली अच्छी किस्म का बीज प्राप्त करना। इसकी जानकारी विद्यालय के माध्यम से प्राप्त होती है। गांव में कुछ लोग ऐसे भी हैं जो कि कृषि संबंधी नयी जानकारी जानने का प्रयास करते हैं। कुछ किसान तथा युवक कृषि संबंधी अदभुत जानकारी रखते हैं। कुछ किसान ऐसे भी हैं जो कि विद्यालय के सहयोग से अच्छे बीज का उत्पादन करते हैं। बच्चे विद्यालय में जो भी सीखें उसे तुरन्त अपने घर की अमल में लायें इस पर जोर दिया जाता है, जैसे विद्यालय के समान ही अपने-अपने घर प्रार्थना खेती, गोपालन, सफाई, कम्पोस्ट तैयार करना आदि कार्य बच्चे घर पर भी परिवार के लोगों के साथ करें। फल, साग भाजी व अनाजों के शुद्ध बीज, रोपा, पौध बच्चे को दिये जाते। धान की नई किस्म लगभग पूरे जिले में यहां से फैल रही है।

सारणी संख्या–18

सर्वेक्षित विद्यार्थी परिवार-जीविका का आधार

परिवार संख्या	आय का मुख्य स्रोत	सहायक स्रोत
5	कृषि	—
3	कृषि	नौकरी
1	मजदूरी	कृषि
1	कृषि–पशुपालन	मजदूरी
10		

उक्त सारणी से स्पष्ट है कि विद्यार्थियों के खास रुचि कृषि में है। परन्तु यह बात नहीं है कि यहां से शिक्षा प्राप्त सभी विद्यार्थी कृषि में ही लगे हैं। जिन 32

विद्यार्थियों ने शिक्षा पूरी की है वे अन्य कार्यों में भी गये हैं। कितने विद्यार्थी किस कार्य में हैं इसे नीचे की सारणी में देख सकते हैं।

सारणी संख्या–19

किस कार्य में कितने विद्यार्थी

कार्य के प्रकार	विद्यार्थी की संख्या
1–कृषि	9
2–नौकरी	6
3–शिक्षक	3
4–समाज सेवा	2
5–आगे पढ़ रहे हैं	2
6–लड़कियां अपने घरों में हैं	10
योग	32

जिन दस विद्यार्थियों के परिवारों का सर्वेक्षण किया गया है उनकी स्थिति इस प्रकार है—

सारणी संख्या–20

कृषि कार्य में लगे विद्यार्थी

नाम	उम्र	शिक्षा
1–श्री पुरुषोत्तम पाटणकर	18	आठवीं
2–श्री पढरी गांवड़े	18	उच्चतर माध्यमिक
3–श्री सीतलदास पाण्डागिरे	18	उ० मा०
4–श्री परसराम पण्डागिरे	20	आठवीं
5–श्री श्यामलाल गोहते	18	आठवीं
6–श्री खेमराज चढ़ोकर	22	पांचवीं
7–श्री सुदामा पाटणकर	18	उ० मा०
8–श्री भोजराज पण्डागिरे	18	आठवीं
9–श्री दौलतराव देशमुख	25	आठवीं
10–श्री गुलाबराव देशमुख	18	आठवीं

परिवार के आर्थिक विकास में विद्यालय में शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी का स्थान [illegible] है। यहां

कुल 32 विद्यार्थियों ने 8 वीं कक्षा तक की शिक्षा पूरी की है। ये विद्यार्थी आज अपने अपने धन्धे में लगे हैं। जिन विद्यार्थियों ने यहां की शिक्षा पूरी की है उनमें से 10 का प्रादिक दृष्टि से सर्वेक्षण किया गया। इन सर्वेक्षित विद्यार्थियों का मुख्य धन्धा कृषि है।

जिस विद्यार्थी की जिस कार्य में रुचि है वह उस कार्य में गया है। नौकरी का मोह भी देखने में आया। यदि नौकरी मिल जाती है तो सहज में स्वीकार किया जाता है। लेकिन अधिक लाभ की दृष्टि से कृषि यहां का मुख्य धन्धा है। यही कारण है कि अन्य कार्यों को करते हुये भी खेती में मदद करने का प्रयास रहता है।

इनमें से दो विद्यार्थी हरिजन हैं। शेष कुनबी एंव पंवार जाति के हैं। इनका जातिगत धन्धा कृषि है। तीन विद्यार्थियों ने उच्तर माध्यमिक तक शिक्षा प्राप्त की है। शेप ने आठवीं तक शिक्षा प्राप्त की है और उसके बाद कृषि के कार्य में लगे हैं। सभी विद्यार्थी अपने परिवार में कृषि कार्य को देखते हैं। परिवार में अन्य बुजुर्ग परिवार के मुखिया हैं लेकिन कृषि संबंधी मुख्य जिम्मेदारी इन्हीं की है।

सारणी संख्या–21

कृषि की स्थिति

1972-73

नाम	खेती की जमीन (एकड़)	कुल उत्पादन (रुपये में)
1–श्री पुरुषोत्तम पाटणकर	20	20,000-00
2–श्री पंढरी गावड़े ×	3	1,000-00
3–श्री सीतलदास पण्डागिरे	5	2,000-00
4–श्री परसराम पंढागिरे	3	4,000-00
5–श्री श्यामलाल गोड़ते	10	7,000-00
6–श्री खेमराज चढ़ोकर	8	5,000-00
7–श्री भोजराज पण्डागिरे	10	15,000-00
8–श्री सुदामा पाटणकर	20	40,000-00
9–श्री दौलतराव देशमुख	60	35,000-00
10–श्री गुलाबराव देशमुख	9	10 000-00

कृषि संबंधी कार्यों में रुचि होने के कारण अधिक उत्पादन के लिये ये हमेशा प्रयत्नशील रहते हैं। यहां की मुख्य फसल धान, गेहूं, गन्ना, मक्का, दलहन आदि है।

उत्पादन की मात्रा काफी हद तक कृषि की पद्धति पर निर्भर करती है। फिर जमीन की मात्रा का भी प्रभाव पड़ता है। जिनके पास अधिक जमीन है वे कृषि के साधनों को सहज में प्राप्त कर लेते हैं। कुएँ बनाना, पानी खींचने की मशीन लगाना आदि कार्य अधिक जमीन वाले किसानों के लिये लाभप्रद होते हैं, ये सक्षम भी होते हैं। इन कार्यों के लिये ऋण एंव अन्य सुविधायें भी समर्थ किसानों को आसानी से मिलती है। जिनके पास अधिक जमीन है उन्हें परम्परा से भी आर्थिक एंव सामाजिक सम्पन्नता प्राप्त है। जिनके पास कम जमीन है उन्हें अच्छी खेती में कई प्रकार की अधिक कठिनाइयां आती है। लेकिन कम जमीन वाले किसान प्रति एकड़ पैदावार बढ़ाने में हमेशा कम सक्षम होते हैं ऐसी बात नहीं है। यदि जमीन अच्छी है तथा सिंचाई की सुविधा है तो बड़े किसानों की तुलना में छोटे किसान प्रति एकड़ अधिक पैदावार कर लेते हैं, क्योंकि ये थोड़ी जमीन की अच्छी देख-भाल कर लेते हैं। लेकिन यदि जमीन उपजाऊ नहीं है, सिंचाई कीसुविधा नहीं है तो इन्हें कठिनाई होती है।

जिन विद्यार्थियों का सर्वेक्षण किया गया है उनमें श्री पुरुषोत्तम पाटणकर, श्री सुदामा पाटणकर एंव श्री दौलतराम देशमुख के पास ज्यादा जमीन है। ये गांव के प्रमुख किसानों में से हैं। इस कारण इन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्राप्त है साथ ही साथ इन्हें पुश्तैनी आर्थिक साधन भी प्राप्त है। प्रति एकड़ आय की दृष्टि से श्री पुरुषोत्तम पाटणकर, श्री सुदामा एंव श्री दौलतराम देशमुख अच्छी स्थिति में हैं। इनके पास सिंचाई के साधन भी है तथा जमीन भी अच्छी है। छोटे किसानों में श्री भोजराज पण्डागिरे एंव श्री गुलाब राव देशमुख प्रति एकड़ अधिक पैदावार कर लेते हैं। गांव में इनकी खेती अच्छी मानी जाती है।

नोट।—इनको भू-दान में जमीन प्राप्त हुई है। जमीन सामान्य किस्म की है तथा सिंचाई की सुविधा नहीं है।

क—श्री सीतलदास पण्डागिरे की जमीन अच्छी नहीं है। सिंचाई की सुविधा नहीं हैं।

ख—श्री पंढरी गावड़े पशुपालन भी करते हैं। पशुपालन से करीब 2000.00 रुपये वार्षिक आय होती है।

———

7

समस्यायें

इस विद्यालय की समस्याएं बुनियादी तालीम के लिये चुनौती है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न ढग से बुनियादी तालीम के काम चल रहे हैं इस कारण एक जगह की समस्यायें दूसरी जगह की समस्याओं से भिन्न प्रकार की हो सकती है। यहां हम करजगांव विद्यालय की समस्याओं पर विचार करेंगे। इस प्रकार की समस्याओं के दो दायरे माने जा सकते हैं :—

1–करजगांव विद्यालय की विशिष्ट समस्यायें।

2–बुनियादी तालीम की सामान्य समस्यायें जो प्राय: सभी जगह हैं।

विद्यालय के सामने जो समस्यायें है, उनको इस रूप में व्यक्त करना चाहेंगे:-

1–प्रथम समस्या समाज में मौजूदा वातावरण के कारण लोक मानस की श्रती है। बुनियादी तालीम समाज परिवर्तन का एक साधन है इस कारण वह समाज में नये मूल्यों की स्थापना का प्रयास करता है। विद्यालय की ओर से जो कुछ भी किया जाता है वह परम्परागत समाज-व्यवस्था के लिये नया है। इस नये को स्वीकार करना सहज नहीं है। यही कारण है हर कार्य के लिये अनुकूल वातावरण बनाना पड़ता है। जो कुछ है उससे भिन्न करने में जो कठिनाई आती है उन सभी कठिनाइयों का सामना इस विद्यालय को करना पड़ता है।

समाज की जो दिशा है वह इससे विपरीत है। केवल शिक्षण पद्धति ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण सामाजिक ढांचा ही बुनियादी तालीम के विपरीत है। इस विपरीत वातावरण में एक विद्यालय का टिका रहना अत्यन्त कठिन है। जो विद्यार्थी यहां आते हैं, जो अभिभावक एवं नागरिक इस तालीम से सहमत हैं, सहयोगी है उन्हें स्वयं भी इस पर पूरा विश्वास नहीं हो पाता है। वे सोचने लगते हैं-बुनियादी तालीम है तो अच्छी, इसमें लाभ भी मिला है पर आज के समाज में संभव नहीं, क्योंकि

समाज का वातावरण भिन्न प्रकार का है। इस प्रकार समाज की वर्तमान परिस्थिति तथा वातावरण इस विद्यालय के लिये एक मुख्य कठिनाई है।

2–गांव-गांव में विद्यालय खुल रहे हैं। करजगांव के आस-पास भी अनेक सरकारी विद्यालय खुल गये हैं। इन विद्यालयों में शिक्षा का भिन्न ढंग है। अक्षरज्ञान प्रधान इस शिक्षा का रोज के जीवन से कोई संबंध नहीं है। जो विद्यार्थी स्वभाव एवं संस्कार से उद्यमी है, जिसके घर में कृषि एवं अन्य कार्य किये जाये हैं उन्हें इन विद्यालयों में आकर मात्र अक्षर ज्ञान की सीख मिलती है। यही नहीं भावी जीवन में नौकरी करनी है तथा खेती के काम से दूर रहना है यह उनकी धारणा बन जाती है। परिणाम यह होता है कि विद्यार्थी ज्यों ज्यों ऊंची कक्षा में जाता है, त्यों त्यों परिश्रम से घृणा करने लगता है। वह इस बात का कायल हो जाता है कि पैंट पहनना एवं मिट्टी से बचाना आज की शिक्षा का अनिवार्य अंग है। अक्षर ज्ञान का सीधा संबंध नौकर बनने से है आज नौकर बनना प्रतिष्ठा का काम माना जाता है। इसका सहज परिणाम हर जगह देखा जा सकता है। गांव में हाई स्कूल उत्तीर्ण या सातवीं-आठवीं तक शिक्षा प्राप्त युवक भी नौकरी की तलाश में भटकता रहता है लेकिन घर पर कार्य नहीं करता। इस परिस्थिति का प्रभाव विद्यालय पर पड़ता है। इस कारण बौद्धिक एवं शारीरिक श्रम में समन्वय की समस्या विद्यालय के सामने आती है।

3–विद्यालय के सामने योग्य शिक्षकों का अभाव रहा है। बुनियादी तालीम के अनुकूल शिक्षक उपलब्ध हो, इसकी कोई व्यवस्था नहीं है। बुनियादी तालीम के शिक्षकों के लिये उपयुक्त प्रशिक्षण संस्थान का भी अभाव है इस कारण योग्य एवं प्रशिक्षित शिक्षक नहीं मिल पाते।

इससे संबंधित एक बड़ी समस्या शिक्षकों के स्थायित्व की है। जब शिक्षकों का अभाव है उस स्थिति में यदि शिक्षक बदलते रहे तो कठिनाई बढ़ जाती है। इस विद्यालय में स्थायी तौर पर कई वर्षों तक गिने-चुने शिक्षक ही रहे। अधिकांश शिक्षक कम समय तक ही विद्यालय में रहें। विद्यालय छोड़कर जाने के कई कारण देखे गये जैसे, (क) आर्थिक कठिनाई (ख) अन्य जगहों पर व्यक्तिगत विकास का लोभ (ग) नौकरी का मानस (घ) इस काम में रुचि न होना आदि। शिक्षकों में स्थायित्व की कमी एवं योग्य शिक्षकों का अभाव विद्यालय को अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने में बड़ी बाधा है।

4–सरकारी मान्यता के बिना विद्यालय को विद्यार्थी मिलना संभव नहीं। सरकारी मान्यता कई कारणों से जरूरी हो जाती है, जैसे 1-विद्यार्थी अपने को सरकार द्वारा निर्धारित श्रेणियों (क्लास) में मूल्यांकन करना चाहते हैं। 2–यदि आगे

पढ़ना हो तो उसके लिये सरकारी मान्यता जरूरी है। 3-यदि नौकरी में जाना हो तो भी मान्यता जरूरी है। 4-आज का जो मानस है उसमें सरकारी मान्यता आवश्यक है।

देर-सवेर बुनियादी विद्यालय को सरकारी मान्यता लेनी पड़ती है। यदि सरकार बुनियादी तालीम की शिक्षा को अपनी शिक्षा के किसी क्लास के समकक्ष मानती है तो वह कई प्रतिबन्ध लगाती है। जो स्थिति है उसमें (क) सरकारी पाठ्यक्रम को स्वीकार करना पड़ता है। (ख) परीक्षा परम्परागत ढंग से, अन्य विद्यालय की तरह होती है। (ग) समय-समय पर सरकारी अधिकारी यहां की शिक्षा का मूल्यांकन करते हैं कि उनका पाठ्यक्रम ठीक से पढ़ाया जा रहा है या नहीं (घ) विद्यार्थी-शिक्षकों का रजिस्टर सरकारी नियमानुसार रखना होता है (च) शिक्षक मौजूदा प्रशिक्षण संस्थाओं से प्रशिक्षित हों ऐसी अपेक्षा भी रहती है।

उक्त सीमा को स्वीकार करने पर विद्यालय की स्वायतत्ता काफी प्रतिबधित हो जाती है। सरकार एवं उसके पाठ्यक्रम का बड़ा बोझ हो जाता है। बुनियादी विद्यालय को दोहरी मेहनत करनी पड़ती है। एक ओर बुनियादी तालीम के सिद्धांतों को अनुसार समवाय शिक्षण का लक्ष्य माना गया है, इस कारण व्यावहारिक कार्य के साथ-साथ समवाय पद्धति से ज्ञान देने का प्रयास रहता है। दूसरी ओर सरकारी पाठ्यक्रम को परीक्षा के लिये पूरा करना पड़ता है।

5— विद्यालय के सामने आर्थिक कठिनाई भी आती है। सरकार इस प्रकार के प्रयोगों के लिये आर्थिक मदद नहीं देती है। परिणाम स्वरूप विद्यालय का जो भी खर्च है उसे अन्य एजेंसियों से ही प्राप्त करना होता है। इस विद्यालय को मुख्यत: दान, रचनात्मक सस्थाओं जिसमें गांधी स्मारक निधि मुख्य है–तथा कुछ विदेशी एजेंसियों से आर्थिक मदद मिलती रही है। लेकिन इन स्रोतों से मिलने वाली आर्थिक मदद पर्याप्त नही होती। अत: बजट राशि में कमी करने की स्थिति बनी रहती है।

स्वावलम्बन का रास्ता शायद अकेला एक विद्यालय नहीं खोज सकेगा। एक विद्यालय तो इस अथाह समुद्र में डूब जायेगा। गांधीजी ने भी कहा था कि विद्यालय में उत्पादित माल सरकार को खरीदना चाहिये। माल शिक्षण के साथ बनेगा अतः गुण में नीचा भी हो सकता है। सरकार को चाहिये कि इस प्रकार का माल खरीद कर विद्यालय स्वावलम्बन को मदद दे। परन्तु आज ऐसा कुछ नहीं है। इस प्रकार की चीजों के उपयोग के लिए जनमानस भी बनाना चाहिए। विद्यालय स्वावलम्बन के लिए आवश्यक है कि विद्यालय को पर्याप्त आर्थिक साधन प्राप्त हों। ये आर्थिक

साधन भूमि, पूंजी, तकनीक, प्रशिक्षण आदि के रूप में होगा। फिर बाजार की सुविधा भी जरूरी है।

इस विद्यालय के सामने स्वावलम्बन की समस्या बराबर रही है। अपनी क्षमता के अनुसार यहां स्वावलम्बन की दिशा में कई कदम उठाये गये। लेकिन ये कदम आगे नहीं बढ़ सके। अन्य कठिनाइयों के साथ साथ स्वावलम्बन भी एक कठिनाइ बन गयी। तेलघानी, साबुन, कताई-बुनाई आदि अनेक उद्योग प्रारम्भ किये गये परन्तु सभी कुछ दिन चलने के बाद बन्द हो गये। किसी के सामने पूंजी की समस्या, किसी के सामने प्रशिक्षित शिक्षक की समस्या, किसी के सामने तकनीक की समस्या, तो किसी के सामने बाजार की समस्या रही।

6–आर्थिक प्रश्न के साथ ही विद्यार्थी की भी एक समस्या जुड़ जाती है। विद्यार्थी जो कुछ भी सीखता है उसका जीवन में उपयोग हो यह अपेक्षा रहती है। फिर बुनियादी तालीम में तो यह अपेक्षा और भी स्वाभाविक है। लेकिन मौजूदा व्यवस्था में सीखे हुए धंधे का उपयोग कम हो पाता है। हां, खेतिहर परिवार के लिये कृषि पशुपालन उपयोगी होता है। यदि कोई विद्यार्थी विद्यालय में उद्योग सीखता है तो शिक्षा पूरी करने के बाद वह उस उद्योग से अपनी जीविका चला सके इतनी सुविधा उसे मिले तथा इसकी योग्यता भी उसमें आ जाये। इसके बिना उद्योग सीखने का आकर्षण नहीं रहता है। अब तक की व्यवस्था में इस प्रकार की सुविधा नहीं प्राप्त हो पायी है।

7–इस विद्यालय की जो समस्यायें हैं वे बुनियादी विद्यालय की स्थिति का एक नमूना है। यदि कोई बुनियादी विद्यालय का प्रयोग करना चाहे तो उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ये कठिनाइयां कभी-कभी इस सीमा तक बढ़ जाती है कि विद्यालय बन्द करना पड़ता है। कठिनाइयों के बीच दो रास्ते रहते हैं। एक, सरकारी नियम एवं पाठ्यक्रम के साथ समझौता किया जाय। दो, विद्यालय को बन्द कर दिया जाता है। विद्यालय के लिए जो चीजें जरूरी है उनके बिना विद्यालय का चलना संभव नहीं। विद्यार्थी, शिक्षक एवं आर्थिक साधन के बिना कोई विद्यालय नहीं चल सकता। और ये चीजें बुनियादी विद्यालय को सहज प्राप्त नहीं होतीं।

8

उपसंहार

जहां तक शिक्षा पद्धति का सवाल है इसमें भारत का अपना योगदान रहा है। प्राचीन काल में "गुरुकुल" के रूप में शिक्षा की खास पद्धति थी। वर्णाश्रम धर्म के आधार पर शिक्षा का जो ढंग था वह आज की समस्याओं को नहीं सुलझा सकता है। उसकी आज की परिस्थिति में क्या उपायदेयता हो सकती है वह अलग प्रश्न है। भारत में जो गुरुकुल पद्धति थी वह बाद में समाप्त होती गयी। भारतीय इतिहास की यह विशेषता मानी जाती कि यहां के जीवन पर भारत से बाहर की जीवन पद्धति का भरपूर प्रभाव पड़ा है। बाहर की संस्कृति का प्रभाव भारतीय जीवन को प्रभावित करता रहा है। लेकिन विदेशों से जो प्रभाव यह आये थे वे भारतीय समाज के साथ, अपने प्रभाव को डालते हुए, भारतीय संस्कृति के साथ एकरस होते गये। मध्यकाल में मुस्लिम संस्कृकि भारतीय संस्कृति के साथ उस रूप में एकरस नहीं हो सकी, जिस रूप में कि उससे पहले की संस्कृतियां हुई थी। भारतीय शिक्षा को एक दिशा अंग्रेजों के आने के बाद मिली। अंग्रेज भारत में शासन करने आये थे। उनके आने से शिक्षा को जो दिशा मिली उसके परिणाम स्वरूप मौजूदा कालेजों एवं विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई।

ब्रिटिश शासन काल में अंग्रेजी शिक्षा की आवश्यकता थी क्योंकि (1) अंग्रेज शासक को ऐसे लोगों की आवश्यकता थी जो कि अंग्रेजी समझ सकें, बोल सकें, एवं लिख सकें। इसके माध्यम से वे भारतीय जनता पर अधिक "लाभकर" ढंग से शासन कर

सकते थे। 2—उन्हें ऐसे क्लर्क किस्म के लोगों की आवश्यकता थी जो कि उनका काम अंग्रेजी में, उनके ढंग से कर सकें। इसके लिए अंग्रेजी जानने वाले लोगों की जरूरत थी। यह आवश्यकता इसलिए पड़ी कि इतने बड़े देश में सभी कार्य अंग्रेज नहीं कर सकते थे। छोटे पदों पर अंग्रेजी जानने वाले तथा अंग्रेजों के भक्त लोगों की जरूरत थी। उन्होंने जो शिक्षा व्यवस्था यहां चलायी उससे उनकी उक्त जरूरतें पूरी होती थी। आजादी के बाद हमने शिक्षा को उसी रूप में स्वीकार कर लिया जिस रूप में अंग्रेजी राज ने प्रारम्भ किया था। हमने यह नहीं देखा कि हमारी आवश्यककायें क्या है। शिक्षा में परिवर्तन के नाम पर जो परिवर्तन हुए उसमें कभी तीन वर्ष का अभ्यास क्रम तो कभी चार वर्ष का अभ्यास क्रम लागू किया गया। पाठ्यक्रम में परिवर्तन के नाम पर कुछ भारतीय संत महात्माओं के नाम जुड़े, कुछ नये लेखक सामने आये। स्नातकोत्तर कक्षाओं में तो आज भी भारतीय लेखकों का अभाव ही दिखता है। उसका पाठ्यक्रम आज भी पाश्चात्य ज्ञान पर आधारित है।

यह देखने की बात है कि आज की शिक्षा से हमें क्या मिलता है? हमारी राय में इससे अक्षर ज्ञान अवश्य मिलता है पर वह नहीं मिलता जो वास्तव में मिलना चाहिये। जापान के एक विद्वान प्राध्यापक ने शिक्षा के बारे में जो बात कही उसका स्मरण यहां पर किया जा सकता है। उसने एक प्रश्नावली दी और कहा, यदि तुम ईमानदारी के साथ इन प्रश्नों का "हां" में उत्तर दो तो ही मैं तुम्हें सच्चे अर्थों में शिक्षित मानूंगा—

1-क्या शिक्षा ने तुम्हें सत्कार्यों के प्रति सहानुभूतिशील और उनका सक्रिय समर्थक बनाया है ?

2-क्या शिक्षा ने तुम्हें असहायों का साथी, कमजोरों का बड़ा भाई बनाया है ?

3-क्या शिक्षा ने तुम्हें सार्वजनिक सेवा में तत्पर बनाया है ?

4-क्या तुम मित्र बनना और मित्रों को बनाये रखना सीख सके हो ?

5-क्या तुम जानते हो कि मित्र होना क्या चीज है ?

6-क्या तुम ईमानदार आदमी और सच्चरित्र स्त्री से आँख मिला सकते हो ?

7-क्या नन्हें बच्चों में तुम्हें प्यारापन नजर आता है ?

8-क्या जीवन के तुच्छ उबाऊ कामों में भी तुम उदार और प्रसन्न रह सकते हो।

9-क्या गली में अनाथ कुत्ता तुम्हारे पीछे पीछे चला आता है ?

10-क्या बरतन मांजना और खेत गोड़ना भी तुम्हें संस्कारी जीवन के [illegible]

ही मेल खाता हुआ जान पड़ता है, जितना कि सितार बजाना या गोल्फ खेलना।

11–क्या तुम अपने प्रति भी भले हो और अकेले में प्रसन्न रह सकते हो ?

12–क्या दुनियां पर दृष्टि डालने पर तुम्हें पैसे के सिवा भी कुछ नजर आता है?

13–क्या कीचड़ भरे गड्ढे में झांकने पर तुम्हें कीचड़ के अलावा भी कुछ दिखाई देता है ?

14–क्या रात को तुम आसमान को ताकते हो और तारों से परे भी कुछ देखते हो ?

15–क्या तुम्हारी आत्मा सरजनहार के साथ रिश्तेदारी का दावा कर सकती है ?[1]

(ख) भारत के सामने अपने आर्थिक विकास की योजनाओं का निर्णय करते समय या इसके भी पहले सामाजिक एवं राजनैतिक ढांचे का गठन करते समय एक उपयुक्त जीवन पद्धति, जीवन दर्शन के चुनाव की समस्या रही है, जिससे कि यहां की समस्यायें सुलझ सकें। होना तो यह चाहिये था कि यह चुनाव यहां की परिस्थिति, परम्परा और समस्याओं के संदर्भ में हो। प्रारम्भ में यह चुनाव पाश्चात्य ढग से औद्योगिक जीवन दर्शन और भारतीय परम्परा के आदर्श बीच रहा। लेकिन कालान्तर में गांधीजी के जीवन दर्शन के बजाय पाश्चात्य ढग के आर्थिक ढांचे को स्वीकार किया गया। यही स्थिति शिक्षा के क्षेत्र की हुई। यह जानते हुये भी कि मोजूदा शिक्षा से हमारी समस्या नहीं सुलझ सकतीहै, हमने उसे स्वीकार किया, क्योंकि यह एक बना बनाया ढांचा है-एक लीक है, जिस पर आंख बन्द कर भी चल सकते है। हां, आंख खोलकर देखने पर साफ दिखता है कि हम गलत रास्ते पर जा रहे हैं, यदि इसी पर चलते रहे तो गड्ढे में गिरेंगें।

हमें यह स्मरण रखना चाहिये की भारत विकेन्द्रित ढंग से बसे लाखों गांवों में निवास करता है। बिजली की चमक के विस्तार के बावजूद आज भी करोड़ों झोपड़ियों में घोर अंधेरा है। इन झोपड़ियों में रहने वाले को आज भी रोजगार नहीं मिलता, शिक्षा नहीं मिलती, भरपेट भोजन नहीं मिलता है। क्या उन्हें शहरों में, पाश्चात्य ढंग की जीवन-पद्धति में बिठाया जा सकता हैं ? क्या इन झोपड़ियों में रहने वाली श्रमशक्ति को भारी उद्योगों मे लगाया जा सकता है ? केवल अक्षरज्ञान से इस देश के लोगों की समस्यायें बढ़ जाती हैं–घटती नहीं। यदि किसी मजदूर ने हाई स्कूल तक, या मिडिल तक भी शिक्षा प्राप्त करली तो उसका जीवन संकटमय हो

---

[1] मीरा "लीवज आफ गोल्ड" नवनीत, नवम्बर, 1973 पेज 67 पर उद्धृत,

आता है। इसके सामने समस्या आ जाती है कि वह क्या करें? वह खेत के काम नहीं कर सकता, परम्परागत ढंग से जीवन नहीं बिता सकता, क्योंकि उसे अक्षर ज्ञान है। वह मात्र नौकरी कर सकता है। पर नौकरी मिले कहां? क्या हम प्रत्येक पढ़े-लिखे नागरिक को नौकरी दे सकते हैं?

तो हमारी परिस्थिति भिन्न है। इस भिन्नता को पाश्चात्य विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। इस भिन्नता की पुष्टि के लिये कोई प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि यहां के नागरिकों को जीवन की शिक्षा दें-ऐसी शिक्षा जिससे जीवन की समस्यें सुलझ सके। गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा के माध्यम से जीवन भर की शिक्षा की एक योजना प्रस्तुत की थी। उन्होंने माना था कि शिक्षा को वर्षों में सीमित नहीं किया जा सकता है। शिक्षा तो गर्भ से प्रारम्भ होकर उस समय तक चलती रहती जब तक व्यक्ति का जीवन रहता है। मनुष्य सतत् ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया से गुजरता है। यह ज्ञान उसे कार्य के साथ-साथ प्राप्त होता है। हम जो भी कार्य करते हैं उससे कुछ न कुछ सीखते हैं। इसे समवाय शिक्षण कहा गया। जीवन की शिक्षा जीवन की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में मददगार होगी। वर्तमान शिक्षा पद्धति में बुनियादी परिवर्तन किये बिना व्यक्ति तथा उसके माध्यम से समाज-परिवर्तन संभव नहीं है। शिक्षा को अब विद्यालय की चहार-दीवारी से बाहर आकर आने वाले वर्षों की शिक्षा नीतियों के मुख्य विचार के रूप में "जीवन भर की शिक्षा" को बनना होगा।[1]

यूनेस्को द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण में भी ऐसी शिक्षा की बात कही गयी है जो सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित करे। इस प्रकार की शिक्षा जीवन भर चलेगी और मौजूदा व्यवस्था की तरह वर्षों (क्लास के रूप में) सीमित नहीं होगी। प्रत्येक व्यक्ति को अपना मार्ग चुनने की स्वतंत्रता होनी चाहिये[2] और शिक्षा उसमें मददगार हो। इसके लिये यह भी जरूरी है कि शिक्षा को कृत्रिम वर्षों में विभाजित नहीं करना चाहिये। व्यक्ति को अपनी रुचि, योग्यता के अनुसार ज्ञान प्राप्त करने की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिये। शिक्षा एवं रोजगार के बीच इस प्रकार के सम्बन्ध होने चाहिये कि डिग्रियां उसमें बाधक न बने। आज की शिक्षा में सामान्य शिक्षा, विज्ञान की शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, व्यावसायिक सब अलग-अलग है। इनके स्थान पर प्राथ-मिकता से माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा बौद्धिक, तकनीकी तथा शारीरिक

---

1 श्रीमन्नारायण, नयी तालीम, सितम्बर 1973 में उद्धृत, लर्निंग टू बी (यूनेस्को) 1972 पृ. 182-83।

2 लर्निंग टू बी, पेज 186, यूनेस्को, 1972

(मेनुयल) साथ-साथ दी जानी चाहिये ।[1] इससे व्यक्ति व्यवहारिक जीवन से जुड़ेगा। (ग) करजगांव विद्यालय नयी तालीम की दिशा में बढ़ने का छोटासा प्रयास करता रहा है। पिछले अध्यायों में हमने इस विद्यालय की समस्याओं पर विचार किया है। इन समस्याओं के कारण विद्यालय का प्रभाव काफी सीमित हो जाता है। हम यह कहना चाहेंगे कि विद्यालय के सामने जो समस्यायें है उन्हें सुलझाने में उसे सन्तोष-जनक सफलता नहीं मिली है। यही कारण है कि समस्यायें विद्यालय पर हावी हो रही है। यह सन्देह होना स्वाभाविक है कि विद्यालय शायद ही समस्याओं से जूझने में समर्थ हो पाये।

यदि इस प्रकार के प्रयोगो को प्रकाश स्तम्भ बनाना है तो इसके लिये नये ढंग से संगठित रूप में प्रयास करना होगा। इस प्रकार के प्रयोगों को प्रोत्साहित करने के लिये जरूरी है कि :—

1–देश में बुनियादी तालीम को चलाने के लिये राष्ट्रीय स्तर पर कार्य हो और कुछ चुने स्थानों पर पूरी शक्ति लगायी जाय। एकाकी स्तर पर समस्यायें सुलझाना कठिन है।

2–आर्थिक व्यवस्था मजबूत की जाय। विद्यालय के पास पर्याप्त आर्थिक साधन-स्वावलम्बन की दृष्टि से हो।

3–शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था हो, साथ ही साथ निष्ठावान शिक्षकों को प्रोत्साहन और प्रेरणा दी जाय।

4–विद्यार्थियों को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बन की शिक्षा मिलनी चाहिये ताकि रोजगार के लिये भटकना न पड़े।

5–शिक्षा विभाग को बुनियादी तालीम विद्यालयों को प्रायोगिक शिक्षण केन्द्र के रूप में स्वीकार करके यथोचित सहायता करनी चाहिये और उन्हें सरकारी पाठ्यक्रम एवं बंधन से मुक्त रखना चाहिये।

---

1 वही, पेज 195

———